



माडर्न बुक डिपो
बुकसेलर्स तथा स्टेशनर्स नैनीताल

अजनबी

अजनबी

[मौलिक उपन्यास]

लेखक
सूर्यकुमार जोशी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली



मूल्य : दो रुपये, पचास नए पैसे
प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९५८
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

कलकत्ते में सर्दी नहीं पड़ती, केवल कोहरा पड़ता है, आग नहीं दिखाई देती, दिखाई देता है केवल धुंआं। सुबह के कोहरे और शाम के धुंएं में कभी-कभी वैसी ही ट्रेजडी नजर आने लगती है जैसी टालसटाय ने अन्ना कारेनीना में अन्त में देखी थी—एक मानव-जीवन का विघटन।

लेकिन सहदेव को कलकत्ते के इस कोहरे में ऐसा कुछ नजर नहीं आया। वह तो चिड़िया के बच्चे की तरह फुदककर जैसे ही हावड़ा स्टेशन से बाहर निकला कि कोहरे में खो गया।

हावड़ा पुल पार करते-करते कोहरा पीछे छूट गया और सहदेव ने अपने-आपको एक बिल्कुल नई दुनिया में पाया। उसने ऊंची-ऊंची इमारतों से घिरी, हाल के छिड़काव से गीली सड़कों पर अपनी टैक्सी को बेधड़क फिसलते चले जाते देखा और उसे महसूस होने लगा कि जो-कुछ अभी तक था अब नहीं रहा।

टैक्सी की सीट पर रखा हुआ उसका बिस्तरा, जोकि बहुत-कुछ उसके शरीर का एक अंग बन चुका था, मैला-सा नजर आने लगा, और उसकी वह अटैची, जिसमें बचपन से लेकर अब तक की लिखी उसकी सारी कहानियां और कविताएं थीं, कुछ कम वजनी मालूम होने लगीं।

सहदेव पहली बार कलकत्ते गया था। सहदेव के सामने पहली बार एक नई दुनिया के दरवाजे खुले थे। अभी तक उसके लिए वर्तमान और भविष्य के बीच हमेशा एक खाई बनी रहती थी मगर कलकत्ते में पैर रखते ही वह अपने भविष्य में रहने लगा था। परन्तु, यदि उसका बड़ा भाई उसे कलकत्ते न बुलाता तो शायद वह राजस्थान की अपनी मातृ-

भूमि में अपनी चादर में ही लिपटा सारी जिन्दगी बिता देता। उसकी जिन्दगी की गेंद को लुढ़काने का श्रेय बड़े भाई को ही था।

सहदेव सात-आठ वर्ष के लम्बे अरसे के बाद अपने बड़े भाई से मिलने जा रहा था। उसे अपने भाई की सूरत-शक्ल अच्छी तरह याद थी। वह उसे सड़क की भीड़ में देखकर भी पहचान सकता था, लेकिन वह यह सोच न सकता था कि उसके साथ किस आधार पर अब नया सम्बन्ध स्थापित किया जाय। वास्तव में, सम्बन्ध तो पुराना ही था। सहदेव छोटा और बलदेव बड़ा था और सहदेव की शिक्षा-दीक्षा बलदेव द्वारा भेजे गये मनीआर्डरों से हुई थी। फिर भी सहदेव यह निश्चय न कर पा रहा था कि किस तरीके से पेश आने से बलदेव खुश हो सकेगा। बचपन के अनुचित, असंगत सम्बन्धों के आधार पर भावी सम्बन्ध स्थापित करने की बात सोचना सहदेव को गलत दिखाई दे रहा था।

बलदेवराजसिंह एक पांच-मंजिले मकान के एक शानदार फ्लैट में रहता था। गत आठ-दस वर्षों के अथक प्रयास से और बहुत-कुछ अपनी भाग्य-रेखा के बल से उसने अपने लिए समाज में एक सुरक्षित स्थान बना लिया था। उसके कमरों की सजावट देखकर उसके विकसित व्यक्तित्व का अच्छा परिचय मिलता था। नए-नए डिजाइन की कुर्सियाँ, चमकती हुई छोटी-छोटी मेजें, जगह-जगह रखी हुई एश्ट्रेज, दीवारों पर टँगे तैल-चित्र—सभी उसकी सम्पन्नता का साक्षात् सबूत पेश करते थे। सहदेव उस सम्पन्नता में सांस ले स्वयं को सम्पन्न समझने लगा।

लेकिन उस फ्लैट में एक कमरा ऐसा भी था जिसके एक कोने में मैले कपड़ों की गठरी, दूसरे कोने में पुरानी किताबों और कभी काम में न आने वाले पुराने बरतनों से भरी एक अलमारी और तीसरे कोने में एक पलंग था, जिसकी चादर मैली हो चली थी। पलंग के सिरहाने एक छोटी मेज पर दवाओं की शीशियां रखी थीं। उस कमरे में दीवार पर टँगे

चित्र में दिखाई गई मुरली मनोहर की मुस्कान भी फीकी नजर आती थी। वह गोमती का कमरा था।

गोमती बहुत कमजोर हो चुकी थी। उसकी आंखें धँस गई थीं और छाती सूख गई थी। सहदेव ने बहुत पहले से सुन रखा था कि गोमती बीमार थी। अतः उसके मुंह पर मौत की छाया देख उसे आश्चर्य न हुआ। हां, कलकत्ते की नई दुनिया में सर्वप्रथम भाभी का मरणासन्न मुंह देखना उसे एक अपशकुन-सा लगा। फिर भी, औपन्यासिक सहानुभूति के नाते सहदेव ने पूछा :

"बहुत कमजोर हो गई हो, भाभी ? क्या बात है ?"

गोमती ने उत्तर न दिया। एक प्रत्यक्ष बात कहना और उसकी पुष्टि की अपेक्षा करना अनावश्यक था। परन्तु गोमती उस समय यह जानना चाहती थी कि उसका देवर सचमुच हमदर्द था या महज दिखावे के लिए खैरियत पूछ रहा था। अभी तक जितने लोग उसके स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता प्रकट करने आते, वे कमरे से बाहर निकलते ही या गोमती की मौजूदगी में ही उसके रोग को भूलकर अपने बारे में, तरक्की कर रहे अपने बच्चों के बारे में बोलने लगते थे। लेकिन गोमती हर दुखी प्राणी की तरह, अपना दुखड़ा सुनाने को आतुर रहती। उसने आँखों में आँसू भर कर कहा :

"देखो, मेरी बांहें कितनी पतली हो गई ; और यह देखो, सिर के सारे बाल झड़ने लगे !"

उस समय सहदेव इस तरह की बातें देखना-सुनना न चाहता था। दूसरों का दुखदर्द कभी भी उसे एक ठोस यथार्थ के रूप में नहीं, बल्कि शीघ्र ही बह जाने वाले एक तरल पदार्थ के रूप में दिखाई देता था। खास तौर पर उस दिन तो वह दावत खाने बैठा ही था और पहले ग्रास के साथ अपने मुंह का स्वाद न बिगाड़ना चाहता था। वह भाई की इंतजार में था और जब तक शाम को बलदेव दफ्तर से न लौटा, सहदेव ने अपने जीवन को स्थगित रखा।

बलदेव, अपनी आदत के अनुसार, गम्भीरता और खामोशी के साथ सहदेव से मिला। "कब आए ? कैसे आए ?" कहकर अपने चेहरे पर अतिरंजित प्रसन्नता का भाव लाना उसे पसन्द न था। जिस तरह वह अपनी कारोबारी चिट्ठियां पढ़ते समय अपने मुख के भाव न बदलता था, उसी तरह किसी नए आदमी से मिलते वक्त अपने चेहरे पर किसी प्रकार का निश्चयबोधक भाव न आने देता था। राजी-खुशी पूछकर वह गुसलखाने में चला गया।

गुसलखाना कमरे से सटा था और सहदेव कमरे में बैठा था। बलदेव ने गुसल में कुछ देर लगाई लेकिन जब वह बाहर निकला तो एक देवता की तरह स्वच्छ और सुन्दर दिखाई दिया। उसका सीना एक कसरती जवान-सा तना हुआ था और बांहों की मांसपेशियां स्वतः उभरी हुई थीं। उसने एक अपर्याप्त तौलिया अपने कमर में लपेट रखा था और उसकी सुडौल जाँघें दिखाई दे रही थीं जिन्हें सहदेव ने आठ-दस वर्ष पूर्व बालीबाल और टैनिस के मैचों में सराहा था।

बलदेव हर काम धीरे-धीरे करता था। रेलगाड़ी छोड़ना उसे मंजूर था मगर दौड़कर पकड़ना उसे गवारा न था। वह धीरे-धीरे अपने बदन को पोंछ रहा था और सहदेव की मौजूदगी में अपनी प्रायः नग्नता छिपाने की जरूरत न समझ रहा था। शरीर को अच्छी तरह सुखाने के बाद भी उसकी पीठ पर पानी की एक-दो बूंदें झलक रही थीं और सहदेव ने चाहा कि वह उठकर उन्हें पोंछ दे परन्तु वह अपनी जगह चुपचाप बैठा रहा।

"घूमने चलोगे ?" बलदेव ने पतलून पहनते हुए कहा। "लेकिन क्या तुम इन्हीं कपड़ों में चलोगे ? नहीं, नहीं। यह लो, यह बुश्शर्ट पहनो।" सहदेव ने उस बुश्शर्ट को पहनकर फ़ुल साइज़ के आइने में अपनी सूरत देखी और अपने-आपको एकदम बदला हुआ पाया।

दोनों भाई घूमने निकले। उस दिन सहदेव अपने बड़े भाई से एक कदम पीछे चलने में ही प्रसन्न था। उसके भाई ने कलकत्ते की रोशनियों

और खुशबुओं की एक नई दुनिया जो उसके लिए खोली थी। उस समय सहदेव को लगा मानो सारा कलकत्ता उसे दहेज में मिला हो। लेकिन, कलकत्ते की उस रंगीन शाम का हीरो सहदेव ने अपने बड़े भाई को ही बनने दिया। यदि वह न चाहता तो भी बलदेव अपनी मौजूदगी में हीरो का रोल और किसीको न दे सकता था। वह रास्ते चलती औरतों को खुलकर देखना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता था। ज्यादातर औरतें उससे आँख न मिलातीं; कुछ मिलाकर प्रसन्न होतीं, कुछ अप्रसन्न। लेकिन बलदेव को उनकी प्रतिक्रिया से कोई वास्ता न था। वह सामने से आ रही हर स्त्री का वस्त्र-हरण अपनी कल्पना में करता चलता था। सहदेव को यह अच्छा न लगा मगर उसने सोचा—शायद शहर की जिंदगी में उस तरह का आचरण क्षम्य था।

उस शाम जब वे एक रेस्तरां में खाने पर बैठे तो सहदेव ने पूछा :

"भैया, घर में भाभी ने भी खाना बनाया होगा न ?"

"तुम्हारी भाभी क्या खाक बनाती है खाना।" बलदेव ने मुंह बिगाड़कर कहा।

सहदेव सोचने लगा कि दिन में उसने जो खाना खाया था उसे दरअसल अच्छा नहीं कहा जा सकता था। उसे भाभी का अस्तव्यस्त कमरा याद आया और ऐसा लगा मानो भाभी के बनाए हुए खाने में उसके सिर के बाल जरूर मिलते होंगे। उसने आगे भाभी की कोई खास बात न की। वैसे भी, उस समय बलदेव की दृष्टि सामने बैठे परिवार की दो युवतियों की ओर थी और ऐसे मौके पर गोमती भाभी की चर्चा करने की अशिष्टता सहदेव न करना चाहता था। उसने समझ लिया था कि भाभी भाई की दुश्मन थी और इसलिए भाभी के प्रति उसे भी कोई सहानुभूति न होनी चाहिए थी।

सहदेव की कलकत्ते में वह पहली रात थी। वह रेस्तरां की शाही सजावट, प्रबन्धकर्ताओं और अतिथियों का परस्पर शालीन व्यवहार,

तरह-तरह के गोश्त और चटनियां—सब चीजों से नया नाता जोड़ रहा था। उधर व्हिस्की के हर पैग के साथ बलदेव के गाल सुर्ख होते जा रहे थे। भुने गोश्त के टुकड़े चबाते हुए शाम की उसकी चुप्पी और सख्ती गायब हो चली थी। वह अच्छे मूड में आकर बोलने लगा :

"अगर मैं भी तेरी तरह राजस्थान में ही पड़ा रहता तो क्या इतना सब कुछ हो सकता था ? ज्यादा-से-ज्यादा २५० रुपये की नौकरी मिल जाती। अच्छा ही किया तुमने जो मेरे कहने से यहाँ चले आये। ५० रुपये की बैंक की नौकरी में क्या रखा था ? अब बताओ, तुम्हारे क्या इरादे हैं ?"

"भाई साहब !" सहदेव ने गद्गद होकर कहा, "आप जो मेरे लिए ठीक समझेंगे वही करूंगा।"

"फिर भी तुम चौबीस-पच्चीस बरस के हुए। कुछ तो सोचा होगा अपने भविष्य के बारे में।"

"मेरा दिल तो कहता है कि मैं लेखक बनूं।"

"अच्छी भाषा लिख सकना, दरअसल, बहुत बड़ी बात है। लेकिन काम क्या करना चाहते हो ? क्या सारी जिन्दगी, सुबह-शाम, चौबीसों घंटे लिखते ही रहना चाहते हो ?"

"नहीं, सारी दुनिया में घूमते रहकर लिखना चाहता हूं।" सहदेव ने अपने-आपको बहुत अक्लमन्द समझते हुए कहा।

लेकिन बलदेव हँस पड़ा और सहदेव ने सोचा कि जरूर ही उससे कोई गलती हुई होगी। अगर उस वक्त बलदेव कह देता कि लिखना-पढ़ना सब बेकार है तो सहदेव जरूर ही मान लेता। वास्तव में, लिखने-पढ़ने से सहदेव का अभी तक इतना लगाव न था कि वह तम्बाकू पीने की तरह एक व्यसन बन चुका हो। तो भी, एक युवक से आशा की जाती थी कि उसके सामने कोई न कोई ध्येय होगा, और उपन्यास-कहानी ही ऐसी चीज थी जिसमें सहदेव अपने अकर्मण्य जीवन से पलायन पा लेता था, एक तरह की राहत पा लेता था।

"तो तुम मुफ्तखोरी करना चाहते हो ?" बलदेव ने हँसते हुए कहा।

"नहीं भाई साहब, लिखना मुफ्तखोरी नहीं। लिखना बहुत मेहनत का काम है।"

"लेकिन अगर कुछ करोगे नहीं तो लिखोगे क्या ?"

इस सवाल पर सहदेव ने पहले कभी न सोचा था। उसका ख्याल था कि बहुतसी किताबें पढ़ने से उसमें भी लिखने का मादा आ गया था और अगर दुनिया वाले उसे लिखने का मौका दें तो एक दिन वह भी एक महान् पुरुष कहलाने लगेगा।

"मुझे तो तुम्हारी बात में कोई तुक नजर नहीं आती," बलदेव ने मुस्कराते हुए कहा। "लेकिन, अगर तुम कोई काम न करो तो भी कोई फिकर की बात नहीं। मैंने इतना कमा लिया है कि अगर हम अक्लमन्दी से चलें तो अपनी सारी जिन्दगी के लिए काफी है। तू चैन की बंसी बजाए जा।"

सहदेव कृतकृत्य हो उठा। उसे अपने जीवन के आरम्भ में ही आर्थिक सुरक्षा का वह आश्वासन मिल गया जिसके लिए निन्यानवे प्रतिशत लोगों को अपने जीवन के अन्त तक लड़ना पड़ता है। वह अब वे सब बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ेगा जिनका नाम उसने अपनी डायरी में नोट कर रखा था और फिर स्वयं भी बड़े-बड़े ग्रंथों का निर्माण करेगा। निश्चय ही, देवता उससे प्रसन्न थे, नहीं तो इतनी आसानी से मनचाहा वरदान किसको मिलता है ! अगर उस वक्त बड़ा भाई जान भी माँग लेता तो सहदेव देने को तैयार था। जो भाई बलदेव-सा उदार हो, जिसने आजीवन सुरक्षा का आश्वासन दिया हो, जो भाई बलदेव की तरह स्वस्थ, सुन्दर, सफल हो उसके लिए मरना भी एक फख्र की बात है।

"भाई साहब, आप बहुत महान् हैं", सहदेव ने भावातुर होकर कहा, "मेरे पूर्वजन्म का फल है कि आप-सा भाई मिला।"

बलदेव ने एक सिगरेट बुझाकर दूसरी सुलगाई और एक लम्बा कश

खींचकर मुस्कराते हुए कहा, "कई दफा सोचता हूं, मैंने पूर्वजन्म में—अगर पूर्वजन्म नाम की कोई चीज है—तो जरूर कोई पाप किया होगा।"

"आपमें क्या कमी है, भाई साहब ?" सहदेव ने शंकित होकर पूछा।

"वैसे ऊपर से तो कोई कमी नहीं। भगवान् ने अच्छी सूरत-शक्ल दी है, मां-बाप ने अच्छा पढ़ाया-लिखाया है, अपने पुरुषार्थ से पैसा भी अच्छा कमाया है, मगर भाग्य ने बीवी ऐसी दी कि मत पूछो। मैं उसे अमृत भी पिलाऊं तो उसे ज़हर लगेगा।"

"लेकिन भाभी पहले तो ऐसी न थीं," सहदेव ने बात जारी रखने की कोशिश से कहा।

"सब भाग्य की बात है—भाग्य की," बलदेव उठते हुए बोला।

अपने भाई को असहाय देख सहदेव को दुःख हुआ, परन्तु भाई के दुःख से अधिक उसका अपना सुख था, जिसका आश्वासन उसे मिल चुका था। वह भी उठ खड़ा हुआ और गम्भीर चेहरा बनाकर भाई के पीछे-पीछे चलने लगा।

सड़कों पर बिजली के विज्ञापनों के लाल-नीले अक्षर थके हुए से, महज अपनी ड्यूटी पूरी करते-से नजर आ रहे थे। सूनी सड़कें, दिन भर भार वहन करने के बाद लम्बी पड़कर सुस्ता रही थीं और उन पर खड़ी खामोश इमारतें सहसा खिन्न दिखाई देने लगी थीं।

बलदेव सुबह दफ्तर चला जाता और सहदेव दिन-भर अकेला रह जाता। वह लेटे-लेटे एमली जोला के उपन्यास और मोपासां की कहानियाँ पढ़ता रहता। गोमती भी उसी फ़्लैट में थी परन्तु अब वह अधिकतर अपने कमरे में ही सीमित रहती थी।

सहदेव में साहित्य के प्रति फिर रुचि जागी थी और वह एक महान् लेखक बनने के सपने फिर देखने लगा था। उसने अपनी चिरपरिचित डायरी, जो पीले कागजों की एक जिल्दबँधी कापी थी, अपनी अटैची में से निकाल ली थी और उसे उलट-पुलटकर देखना शुरू कर दिया था। वह क़ापी जिसे कभी वह 'डायरी' कभी 'जर्नल' कभी 'नोट्स' कभी 'आत्मकथा' या 'इतिहास के पन्ने' कहा करता था, उसकी पुरानी साथिन थी। वह उसमें पिछले दो-तीन वर्षों से अपने मन की तमाम गन्दगी और अच्छाई उँड़ेलता आया था और एक माने में वह उसकी नित्यप्रति बदलती मानसिक स्थिति की नंगी तस्वीर थी, यद्यपि उसका हर पन्ना जीवन के निस्सार, निरर्थक क्षणों को स्थायी मूल्य देने के असंभव उद्देश्य से लिखा गया था।

सहदेव को कालेज की पढ़ाई के दौरान ही महसूस होने लगा था कि वह कोई मामूली आदमी नहीं। उसे भी दुनिया में कोई बहुत बड़ा पार्ट अदा करना था। वह समझ न पाता था कि क्यों शोहरत की भूख अच्छी नहीं समझी जाती। उसने कहीं ठीक ही पढ़ा था कि बड़े-बड़े काम करने वालों को नामवरी हासिल करने की ख्वाहिश का मजाक नहीं उड़ने देना चाहिए। वह तो चाहता था कि दुनिया की नजरें हमेशा उसी

पर हों, दुनिया हमेशा उसी को प्यार करे। वह दिवास्वप्न देखने लगा, और क्योंकि साहित्य में उसकी रुचि अपनी निकम्मी जिन्दगी से राहत पाने की गरज से थी, वह उस हर चीज में रुचि रखने लगा जिससे राहत मिल सकती थी। वह अधिकाधिक दिवास्वप्न देखने लगा जिनकी कथा-वस्तु 'जब मैं बड़ा आदमी होऊंगा' शीर्षक के अन्तर्गत आती थी। वह अपने-आपको संसार के प्रसिद्धतम व्यक्ति के रूप में मरते हुए देखने की भी कल्पना कर लेता था.........वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा होगा, एक अस्सी वर्ष का बूढ़ा, टैगोर-जैसे सुन्दर नेत्र और धवल केश वाला। उस समय संसार के सब भागों में—कहीं रात होगी कहीं दिन—लोग-बाग सड़कों पर, होटलों, क्लबों और घरों में, कस्बों और देहातों में युग-पुरुष सहदेव का संदेश सुनने को अपने-अपने रेडियो ट्यून कर बैठे होंगे। उधर सहदेव के कमरे में संवाददाताओं और समाचारपत्र-प्रतिनिधियों की भीड़ लगी होगी। और सहदेव बिस्तरे पर लेटे-लेटे ही माइक्रोफोन के पास अपना मुँह ले जाकर धीरे-धीरे अपने अन्तिम शब्द उच्चारण करेगा।

परन्तु महान् बनने के लिए सहदेव ने, न जाने क्यों, कोई ठोस काम न कर केवल अपनी डायरी लिखकर ही प्रत्येक क्षण को ऐतिहासिक बनाने की चेष्टा की थी। शायद बहुतसे महापुरुषों की जीवनियां पढ़ लेने के बाद वह इस निष्कर्ष पर जा पहुँचा था कि वह कोरी प्रसिद्धि नहीं चाहता। जैसा कि उसने अपनी डायरी में काफी आगे चलकर लिखा था : "प्रसिद्धि से भी बढ़कर एक वस्तु है जिसे सारा संसार चाहता है। वह है 'सुख'। महापुरुषों ने सदा सुख चाहा और मिली उन्हें प्रसिद्धि। किन्तु सुख किसे कहते हैं—यह समझना बड़ा मुश्किल है। मुझे नेपोलियन द्वारा दी गई परिभाषा बहुत ठीक जँचती है। उसने कहा था : 'मेरे स्वाभाविक गुणों का उच्चतम विकास ही मेरे लिए सुख है।"

वास्तव में सहदेव की समस्या यही थी कि वह जान न पाया था कि

उसके स्वाभाविक गुण क्या थे और अनजाने उसे कहां ले जा रहे थे। वह राजस्थान के एक छोटे-से शहर में अपनी विधवा मां के साथ प्रायः दरिद्रता में रहता आया था, और सोलह-सत्रह की आयु से ही जब उसने मैट्रिक पास किया था, तभी से वह स्वावलम्बी होने का असफल प्रयास करता आया था। वह जानता था कि आर्थिक स्वतन्त्रता पाना पुरुष का सर्वप्रथम कर्तव्य है, परन्तु वह अपनी स्वभावजन्य विवशताओं के कारण कभी भी अपने-आपको इतनी अच्छी तरह संगठित न कर पाया था कि सफल आर्थिक प्रयास सम्भव हो पाता। वह रुपया कमाना ही नहीं चाहता था और इसीलिए उसे कोई नौकरी नहीं मिली। उसे कालेज की अपनी पढ़ाई में इसीलिए कोई खास दिलचस्पी न थी क्योंकि उसे मालूम था कि डिगरी हासिल करना नौकरी पाने का महज एक जरिया है। वह बाहरी किताबें पढ़ने लगा और अपनी बाहरी जिन्दगी की नाकामयावियों को भुलाने की कोशिश में बहुत ज्यादा पढ़ने लगा।

कुछ दिनों उसने राजनीतिक कार्य भी किया। लेकिन वह यह न जानता था कि राजनीति में किस उद्देश्य से वह गया था और इसलिए मन लगाकर काम न कर पाया। शाम के वक्त जब उसकी इच्छा रोशनियों से चमचमाते किसी रेस्तरां में बैठ अपने मित्रों के साथ राजनीति पर केवल चर्चामात्र करने की होती थी, उसे मजदूरों की बस्ती में—जहां हमेशा अँधेरा रहता था, और जहां खास तौर पर शाम को पत्थर के कोयले की अनेक अंगीठियों का धुँआ इकट्ठा होकर घटाटोप पैदा कर देता था—उदासीन मजदूरों में जागरूकता पैदा करने का असम्भव काम सौंपा गया।

शुरू में वह नेता बनना चाहता था। बाद में नेताओं का अनुयायी बनकर रहना उसने स्वीकार कर लिया। सामुदायिक स्वार्थ के राजनीतिक सिद्धान्त में वह विश्वास करने लगा, समष्टि में ही अपना सर्वस्व देखने लगा, और उन दिनों की अपनी डायरी में लगातार यही राग अलापता रहा। सहदेव का लक्ष्य अपने व्यक्तित्व को सार्थक बनाना था

न कि मिटाना, और उसकी राजनीति का यही उल्टी मांग थी। अतः राजनीतिक चर्चा में रंगे गये डायरी के वे पन्ने उसे अपने व्यक्तित्व में विश्वास दिलाने के लिए काफी साबित न हुए।

कुछ वर्ष पूर्व वह किसी लड़की से प्रेम करके अपने व्यक्तित्व को एक मूल्य दे देता था। परन्तु धीरे-धीरे वह स्त्री-प्रेम को 'पानी का एक गिलास' समझने की थ्योरी में विश्वास करने लगा था। एक जमाना था जब उसीने एक लड़की के प्रेम में कविताएं लिखी थीं। यही उसकी प्रथम साहित्यिक कृति थी। उन दिनों वह स्वयं को देवीदास और चंडीदास की पांति में खड़ा पाता था। परन्तु अब वह प्रेम से बहुत दूर हो गया था। उसने एक दिन अपनी 'युद्ध की डायरी' को बीच में रोककर लिखा था: "आज मैंने सोचा है कि मैं एक ऐसी बात पर लिखूंगा जिसका युद्ध और राजनीति से कोई वास्ता नहीं है। मैं एक लड़की से प्यार करने लगा हूं। वह मेरे घर के सामने रहती है। उसका नाम सविता है। उम्र सोलह-सत्रह के करीब है। पर डीलडौल से बीस से कम नहीं मालूम देती। उसकी लम्बी, पतली उँगलियां उसकी कुदरती नफासत की गवाही देती हैं। उसकी गोरी, चिकनी बांहें उसके शरीर के ताजगी का बोध कराती हैं। संक्षेप में, वह खाने लायक गोश्त है। ......एक जमाना था जब मैं कृष्णा पर जान देने को तैयार था। और दिन भर आनन्द-विभोर हो कविताएँ लिखता था। लेकिन आज समझने लगा हूं कि कृष्णा के प्रति मेरा प्रेम और सविता के प्रति मेरा आकर्षण केवल लैंगिक भूख है।" प्रेम जो एक स्वस्थ और सुन्दर चीज है, और दो व्यक्तियों को मिलाती है और जिसे लेकर अनन्त काल से काव्य रचे जाते आये हैं और जिसने स्वयं सहदेव को साहित्य और कला में दीक्षा पाने के लिए प्रेरित किया था, सहदेव का सम्बल न रहा। वह यथार्थ-वादी हो गया, इस कदर यथार्थवादी कि इतने दिन के जाने-बूझे, बटोरे हुए आदर्श सब बेकार हो गये।

क्रमशः उसका यथार्थवादी दृष्टिकोण उसे महसूस कराने लगा कि

अर्थोपार्जन की असमर्थता के कारण वह हीन था। परन्तु वह अधिकाधिक बढ़ते हुए इस अन्दरूनी विश्वास के विरुद्ध स्वयं में महानता के लक्षण खोज आश्वस्त होने लगा। अन्त में, उसकी डायरी के पन्ने स्वयं में महानता के लक्षण ढूंढ़ने में भी नहीं, बल्कि जीविकोपार्जन न कर सकने के कारण अपने अधोपतन के प्रत्यक्ष प्रमाण देखने में भरे जाने लगे। उसे कविताएँ फालतू नजर आने लगीं, साहित्य और दर्शन में अरुचि हो गई। आसपास के लोगों के जीवन से भी उसका कोई सम्पर्क न रहा। वह जमाने से अलग कटकर रह गया।

अब वह निश्चित रूप से सहारा चाहता था। अक्सर वह सोचा करता कि क्या ही अच्छा हो अगर कोई बड़ा आदमी, समझदार आदमी, उसकी सब जिम्मेदारी ले ले। वास्तव में, वह एक बाप चाहता था जो उंगली पकड़कर उसे ले चले। वह एक गुरु चाहता था जो उसे मुक्ति का मार्ग दिखा सके। किन्तु पिता और गुरु की खोज में भी उसे निराशा हुई और वह बिलकुल टूटकर अपने-आपको निकम्मा करार कर एक बैंक-क्लर्क का निरर्थक जीवन जीने लगा।

तभी कलकत्ते से बड़े भाई की पुकार आई, 'नौकरी से इस्तीफा देकर फौरन चले आओ।'

डूबते सहदेव को जीवन का सहारा मिला। बड़ा भाई हमेशा से उसके लिए एक जगमगाता सितारा था जिसे वह दूर से सराहना और पूजना चाहता था। परन्तु बड़े भाई ने उसे अपने पास बुलाकर एक नई दुनिया ही बसा दी। वह परियों की सी दुनिया थी और ऐसी दुनिया में, जहां काम कुछ नहीं और आराम बहुत हो, सहदेव में साहित्य-सृजन की रुचि का फिर से जाग उठना उचित ही था।

सहदेव ने अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात कर अपनी डायरी बन्द कर दी। साहित्य-सृजन के संकल्प ने उसमें एक नया उत्साह भर दिया था। शाम हो चुकी थी। उसने उठकर बत्ती जलाई। उन दिनों बलदेव रात को देर से घर लौटता था। उसका इन्तजार करना जरूरी

न था। सहदेव कपड़े पहनकर बाहर जाने को तैयार हो गया।

पीछे से गोमती ने आवाज दी, "देवर जी, रोटी जीम जाओ।"

"मुझे भूख नहीं।" सहदेव ने चिढ़कर जवाब दिया और एक महान् लेखक बनने के अपने सपनों के साथ वह कलकत्ता की सड़कों में खो गया।

बलदेव शेव कर चुका था। दफ्तर का वक्त हो आया था और अभी नहाना, धोना, कपड़े पहनना वगैरह बाकी था। फिर भी ड्रेसिंग टेबिल के आइने के सामने बैठा वह अपनी सूरत देख रहा था। पीछे एक आराम-कुर्सी पर सहदेव चुपचाप अखबार पढ़ रहा था।

उसी समय गोमती बसन्ती रंग की नई साड़ी पहने चली आई। यह कुछ आश्चर्य की बात थी। क्योंकि सब जानते थे कि उसके पास नये कपड़ों से भरे सन्दूक थे मगर वह पहनती हमेशा मैली धोती ही थी। फिर भी बलदेव ने आईने से और सहदेव ने अखबार से निगाह हटाकर गोमती की ओर देखना जरूरी न समझा।

गोमती एक मेज के कोने का सहारा लेकर खड़ी हो गई और जब दोनों भाइयों में से किसी ने उसका स्वागत न किया तो वह मेज पर रखे एक फाउन्टेनपेन से खेलने लगी। वह पेन उसी का था, उसी को विवाहोपलक्ष्य में मिला था। दस वर्ष तक वह गोमती के पास ही रहा—बिल्कुल अछूता, क्योंकि गोमती में इतनी सौंदर्यानुभूति थी कि वह घर का हिसाब और धोबी के कपड़ों की फेहरिस्त बनाने में उस कलम को काम में न लाना चाहती थी, अथवा जिस प्रकार उसने अपने-आपको और अपनी तमाम चीजों को, अपने कपड़ों-लत्तों और गहनों को बेकार बना रखा था, उसी तरह कभी काम में न लाया गया वह पेन था। पिछले कुछ दिनों से वह पेन बलदेव काम में ला रहा था। हर रोज दफ्तर जाते समय वह उसे अपने ताजे रुमाल से पोंछ उसकी सुनहरी टोपी को चमका, अपने कोट की ब्रेस्टपाकिट में लगा लेता था। गोमती

प्रतिदिन यह प्रक्रिया देखती और उसे कुछ ईर्ष्या, कुछ भुनन-सी होती थी। बलदेव का इसमें कोई दोष न था। वह अपनी हर निजी चीज, अपने कपड़े, जूते, कागजात सब बड़े एतिहात से रखता था।

परन्तु उस समय बलदेव के कमरे में खड़ी गोमती के मन में किसी तरह की कटुता न थी। उसने सहज ही उस कलम को उठा बलदेव के लेटरपैड पर अंग्रेजी के अपने अटपटे अक्षरों में लिख डाला: 'मिस्टर बलदेवराजसिंह' और ठीक उसी के नीचे 'गोमतीदेवी'।

बलदेव आइने में अपनी सूरत निहारते हुए भी गोमती की मौजूदगी के प्रति पूर्ण सचेत था, और जब उसने देखा कि लेटरपैड पर वह कुछ लिख रही है तो एकाएक वह तन उठा और बोला, "कलम रख दो। तुम निब बिगाड़ दोगी।" बलदेव की आवाज में हमेशा की तरह तिरस्कार था।

बलदेव उठ खड़ा और गोमती के सामने से उसने लेटरपैड उठा लिया। गोमती की टूटी-फूटी लिखावट में अपना नाम और खास तौर पर गोमती का नाम देख उसे लगा मानो किसी ने उसपर कीचड़ उछाल दिया हो।

"क्या कभी तुम अक्ल से काम लेना भी सीखोगी? लेटरपैड का पन्ना लिखने के लिए होता है न कि ऊपरी कवर। क्या खूबसूरत हैंडराइटिंग है आपका! अगर ए बी सी डी का अभ्यास ही करना था तो एक स्लेट-पैंसिल खरीद ली होती।" और एक झटके से उसने गोमती के हाथ से पेन छीन लिया। रुँआसी गोमती तेजी से कमरे के बाहर चली गई।

लेकिन अगले दिन दफ्तर जाते समय बलदेव को वह पेन अपनी जगह रखा हुआ न मिला। वह चिल्ला उठा, "पेन कहां है?"

गोमती ने उत्तर न दिया। बलदेव का पारा चढ़ने लगा।

"पेन कहां है? बोलती क्यों नहीं?" वह गरज उठा।

"मुझे नहीं मालूम," गोमती ने संयत स्वर में उत्तर दिया।

"देखती नहीं मुझे दफ्तर जाने में देर हो रही है ! मुझे नहीं मालूम तो क्या तेरे······।" बलदेव ने एक शब्द और उच्चारण न कर स्वयं को सज्जनता की परिधि में सीमित रख अपना बड़प्पन महसूस किया।

"जा ढूंढ़कर ला, इसी वक्त," उसने गोमती के अपराध को क्षमा करते हुए आदेश दिया।

"खुद ढूंढ़ लो," गोमती बलदेव की शराफत का इम्तहान लेने पर तुली थी। अगर बलदेव को दफ्तर जाने की जल्दी न होती तो वह उस फाउन्टेनपेन को निकलवाकर ही छोड़ता। वह उस जाहिल औरत से लड़कर अपना दफ्तर का मूड नहीं बिगाड़ना चाहता था। "शाम को जब मैं घर लौटूं मुझे पेन अपनी जगह मिलना चाहिए। नहीं तो, नहीं तो," कहता हुआ वह बाहर निकल आया।

शाम को भी पेन अपनी जगह से नदारद था।

"तुम्हारे छोटे-से दिमाग की हर करतूत मैं समझता हूं। लाओ, मैं खुद ही ढूंढ़ लेता हूं।" बलदेव के लिए गोमती की हर बात समझना आसान थी। यह जान लेना उसके लिए मुश्किल न था कि गोमती ने उस कलम को ज्यादा से ज्यादा अपने कपड़ों की अलमारी में छिपाया होगा। जैसे ही बलदेव ने उस अलमारी को खोला, गोमती लपककर सामने आ खड़ी हुई।

"मेरे कपड़ों की तलाशी लेने की कोई जरूरत नहीं।" उसने सशरीर बलदेव को रोकना चाहा।

बलदेव ने धक्का देकर गोमती को पीछे हटा दिया, और वह धक्का सज्जनता की परिधि में दिये जाने वाले धक्के से जरा कुछ भारी था। अलमारी के सब कपड़े बाहर निकाल वह फेंकने लगा और उस छिपाये हुए फाउण्टेनपेन के पास पहुंचा ही था कि गोमती ने झट से एक साड़ी की तह से उसे निकाल लिया, और अपने पति के प्रिय पार्कर फ़िफ़्टी-वन

को, जो उसे विवाहोपलक्ष्य में मिला था, और जो मनोविज्ञान की भाषा में किसी चीज का प्रतीक हो, नीचे सड़क पर फेंक दिया।

बलदेव के क्रोध का पारावार न रहा। उसने गोमती के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया।

दो-तीन दिन तनातनी रही और फिर सब पहले जैसा ही चलने लगा। यद्यपि इस प्रकार की अप्रिय घटनाओं से सहदेव की खामखयाली में या तथाकथित साहित्य-साधना में कोई फर्क न आता था परन्तु वह देख रहा था कि भाई-भाभी के आपसी झगड़े दिन पर दिन बढ़ते जा रहे थे।

कुछ दिनों पहले की बात थी। सुबह का वक्त था। बलदेव सुबह का खाना घर पर ही खाता था। वह हमेशा की तरह वक्त पर नहा-धोकर खाने के लिए आ बैठा। सहदेव उसके साथ था। यद्यपि बलदेव को दफतर जाने की जल्दी थी पर गोमती ने पहली थाली सहदेव को परोसी और फिर बलदेव के सामने पटककर थाली रखी। बलदेव चुपचाप निवाले उतारने लगा, मगर जब गोमती ने दुबारा भी रोटी फेंककर ही दी तो वह गुस्से में उठ खड़ा हुआ और थाली में लात मार बाहर चला गया। सहदेव भाभी की इस बदतमीजी को माफ न कर सका। वह भी बिना खाये थाली से उठ गया।

सहदेव की समझ में न आता था कि गोमती कब क्या चाहती थी —स्वयं से और दूसरों से। उसने बलदेव की मानसिक शान्ति छीन ली थी और सहदेव का फर्ज था कि वह भाई को शान्ति वापस दिलाने में मदद करे। उसे अपने इस दौत्य से अपनी महत्ता का भान हुआ और उसने निश्चय किया कि वह गोमती भाभी से इस बारे में बात करेगा। उसी दिन उसने शाम को बात छेड़ी :

"भाभी, क्या कारण है कि तुम भाई साहब से हमेशा नाराज रहती हो ? ऐसा उन्होंने क्या अपराध किया है ? आज सुबह क्या बात थी कि तुम इस बुरी तरह पेश आईं।"

गोमती जान चुकी थी कि सहदेव निष्पक्ष नहीं और इसलिए सहदेव से सीधी बात करना उचित ही था। "देवर जी, तुम भी अपने भाई के पक्के गुलाम निकले," गोमती ने मध्यस्थता का पुण्य-भार लेकर आये हुए सहदेव से कहा, "नहीं तो तुम क्यों उठ गए थाली से ? तुम समझते हो अपने बड़े भाई की पूछ पकड़कर तर जाओगे ! अरे, जो अपनी बीवी का सगा नहीं, वह किसका सगा हो सकता है !"

गोमती से समझदारी के स्तर पर बात करना व्यर्थ था। "सच पूछो तो भाभी," सहदेव ने चिढ़कर कहा, "मुझे तुम्हारा रवैया बिल्कुल पसंद नहीं। मुझे तो अभी तक भाई साहब की कहीं कोई गलती नजर नहीं आई।"

"मैं जानती थी, तुम यही कहोगे। हर काम में गलती मेरी ही होती है। मैं रोती हूं तो मेरा रोना गलत है, खुश होती हूं तो खुश होना गलत है," गोमती ने फौरन अपनी हार मानते हुए कहा, "देवर जी, तुमने गलत नहीं कहा। मेरे भाग्य में यही लिखा था।...... जब मैं छोटी थी, अगर कोई बच्चा मुझे पीट देता तो लोग यह कहते, 'छीःछीः, इतनी सयानी होकर रोती है, शर्म नहीं आती' और अगर मैं किसी बच्चे को पीट देती, तो वही लोग कहते, 'छीः छीः, इतनी सयानी होकर मार-पीट करती है, शर्म नहीं आती'।"

"हो सकता है भाभी," सहदेव बोला, "भाई साहब ने भी गलतियां की हों, लेकिन मैं जब से यहां आया हूं तुम्हारी ही गलतियां देख रहा हूं। उस दिन तुमने वह कीमती फाउन्टेनपेन उठाकर बाहर फेंक दिया। ऐसी क्या गलती थी भाई साहब की ?"

हारी हुई गोमती में एक बार फिर प्रतिहिंसा जाग उठी, "अगर मैंने लेटरपैड पर नाम लिख दिया था तो ऐसी क्या गलती कर दी थी ? अगर लेटरपैड बिगड़ भी गया तो ऐसी क्या आफत आ गई थी ? तुम्हारे भैया तो बड़े समझदार आदमी हैं, पढ़े-लिखे हैं, तो फिर क्यों उनके लिए एक छोटी-सी बटन, एक मामूली-सी कलम मुझसे ज्यादा

प्यारी हो जाती है ? कोई भी चीज हो, छोटी या बड़ी, आखिर आदमी से बड़ी कैसे हो सकती है !"

सहदेव को आश्चर्य था कि जिस आदमी में खुद हजारों खामियां हों वह दूसरे की गलतियां निकालने की जुर्रत कैसे कर सकता है ? स्त्रियों में जो गुण होने चाहिएं, गोमती भाभी में एक भी न था। न उन्हें खाना बनाना आता था, न सीना-पिरोना और न पढ़ना-लिखना। और क्या कभी उन्होंने अपनी सूरत आइने में देखी थी ? तो क्यों ऐसी स्त्री, जिस में शरीर या स्वभाव की कोई सुन्दरता नहीं, बलदेव जैसे सफल और सुन्दर व्यक्ति से कुछ आशा रखे ? यह गोमती भाभी की सरासर गलती थी। उनसे बहस करना फजूल था।

"अच्छा भाभी, जैसा मर्जी आये वैसा करो," सहदेव ने कहा। किसी भी उलझन को सुलझाना आसान नहीं। दो आदमियों के बीच में झगड़े सुलझाना तो बहुत ही मुश्किल काम है, और मुश्किलों में पड़ना सहदेव का काम न था।

वह ट्राम पकड़ मैटिनी शो देखने चला गया।

कलकत्ते के जीवन में उन दिनों एक नई गति आ गई थी। दूसरा महायुद्ध चल रहा था और चीजों की कीमतें बढ़ने लगी थीं। व्यापार में नई सूझबूझ वालों के लिए काफी गुंजायश थी और बलदेव भी अपनी सूझबूझ का अच्छा परिचय दे रहा था। यद्यपि वह नौकरी करता था परन्तु वह नौकरी में भी सूझबूझ के जरिये बहुत कुछ कर लेता था। कुछ दिनों पहले ही उसने अपने सेठ को प्रिंटिंग पेपर के सौदे में काफी मुनाफा कराया था, और खुद भी कुछ कमाया था।

शुरू में बलदेव ट्राम या बस से दफ्तर जाया करता था, लेकिन कुछ दिनों बाद ही उसे दफ्तर की एक कार मिल गई। उसके साथी उसकी अचानक बढ़ी हुई इस इज्जत को देख ईर्ष्या करने लगे थे। वह फोर्ड गाड़ी उसे कैसे मिली—इस बारे में दफ्तर के लोगों में तरह-तरह की धारणाएं थीं। कोई कहता था उसने सेठ को एकसाथ कई लाख का मुनाफा करवा दिया था, किसी का ख्याल यहां तक था कि सेठ अपनी बेटी का उससे ब्याह करने वाला था। बात दूसरी ही थी, जो उसने एक दिन आत्म-प्रशंसा के मूड में सहदेव को सुनाई थी।

एक दिन दस-पन्द्रह मिनट देर से वह दफ्तर पहुँचा था, और जब सेठ ने देरी के लिए जवाब तलब किया तो बलदेव ने अपनी स्वाभाविक स्पष्टता के साथ कहा :

"देरी के लिए माफी चाहता हूँ, लेकिन आप जानते हैं कि आजकल ट्राम-बस सब भरी रहती हैं। अक्सर आधा-आधा घण्टा स्टैंड पर खड़े रहकर इन्तजार करना पड़ता है। घर से दफ्तर और दफ्तर से बाजार

और फिर बाजार से घर आने-जाने में ही दिन का सारा वक्त निकल जाता है।···मैं खुद आपसे इस बारे में बात करना चाहता था।"

सेठ को आश्चर्य हुआ और उसने बलदेव पर तीखी निगाह डालते हुए पूछा, "क्या कहना चाहते हो?"

"गोदाम के बाहर अपनी एक फोर्ड गाड़ी पड़ी है। अगर इसी तरह कुछ दिन और पड़ी रही तो हमें उसे कबाड़ी के हाथ बेचना होगा। उस की मरम्मत पर ज्यादा खर्च न आएगा—मैंने एक मिस्त्री से दिखवा लिया है।"

"हूं।" सेठ ने बलदेव के प्रस्ताव का आशय समझते हुए कहा।

"चाहता हूं कि वह गाड़ी इस्तेमाल के लिए मुझे मिल जाय। एक बार आप उसकी मरम्मत करवा दें, आगे आपका पैसा खर्च न होने दूंगा। जहां तक पैट्रोल के खर्च का सवाल है, ज्यादातर वह गाड़ी मैं दफ्तर के काम में ही लाऊंगा, लेकिन अगर आप चाहें तो आधा खर्च मैं दे दूंगा।"

बलदेव का यह प्रस्ताव उसके चरित्र की दृढ़ता और उसके व्यक्तित्व की भावी संभावनाओं की ओर इंगित करता था। सेठ आदमी पहचानता था, आदमियत की कद्र करना जानता था। उसने बलदेव के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

बलदेव ने यह किस्सा सहदेव को सुनाते हुए कहा :

"अक्लमन्दी इसी में है कि इन्सान अपनी समस्या को उसके एक-मात्र हल के साथ पेश करे। फिर समस्या खुद-ब-खुद हल हो जाती है।"

सहदेव पर इस प्रकार के अनुभवपूर्ण वाक्यों का बहुत असर पड़ता था। वह चाहता था कि उन्हें अपनी डायरी में नोट कर ले और कभी अपनी किसी कहानी के पात्र के मुख से उन्हें कहलवाये। यद्यपि बलदेव स्वल्पभाषी था परन्तु वह भी हर उठते हुए आदमी की तरह अपनी प्रशंसा सुनना चाहता था। शुरू में जब वह कलकत्ते आया था, वह अपने दफ्तर के क्लर्कों के बीच बैठकर अपनी सफलताओं का बखान कर

लेता था। सहदेव के आ जाने के बाद से अधिकतर सहदेव को ही अपने बड़े भाई की आत्मा-प्रशंसा के श्रवण का भार वहन करना पड़ता था। ऐसे अवसर पर कभी-कभी बड़ा भाई बहुत कीमती बातें कह जाता था।

परन्तु पिछले कुछ दिनों से सहदेव को अपने भाई के प्रवचनों को सुनने का कम ही अवसर मिलता था। बलदेव सुबह ही घर से निकल जाता और रात को देर से लौटता। वह अधिकतर व्यस्त रहने लगा था और अगर कभी घूमने-फिरने जाता भी तो अपने व्यापारी मित्रों के साथ ही जाता था। उसके दोस्तों में वही लोग होते जो बड़े-बड़े सौदे करते और बाजार के भाव घटाने-बढ़ाने तक की हिम्मत रखते थे।

सहदेव भी उन दिनों मनमाना जीवन जी रहा था। बलदेव ने तो घर में खाना हमेशा के लिए छोड़ ही दिया था और अब सहदेव को भी गोमती के हाथ का बना गतरस भोजन पसन्द न आता था। वह रेस्तराओं में खाता, सिनेमाओं और पुस्तकालयों में जाता और अपनी कहानियों के बारे में सोचा करता। कलकत्ता आए उसे काफी समय हो चुका था मगर बड़े भाई ने किसी भी दिन उससे कोई काम करने को न कहा, कभी कोई मांग न की और सहदेव समझ बैठा कि जिन्दगी आसान हो गई और हमेशा इसी तरह चलती रहेगी।

सहदेव भी ज्यादातर घर से बाहर रहने लगा था। कलकत्ते की वे सड़कें, जिन पर दिन की चकाचौंध में कारोबारी हलचल का पसीना चूता था। रात की गैस लैम्प के एकान्त में अँधेरी गलियों से मिल जाती थीं और उसमें सहदेव को नित नये लोग मिलते। कभी वह किसी अँधेरे पार्क की अकेली बेंच पर घंटों चुपचाप बैठा अपनी कहानियों के कथानक सोचा करता। उस दौरान न जाने तरह-तरह के कितने लोगों से उसकी घनिष्ठता हो जाती। उससे मिलने वालों में एक बड़ी उम्र का यहूदी था जो एक शराब की दुकान करता था, दूसरा एक बूढ़ा अंग्रेज था, जो मोटरगाड़ियों के मरम्मत के एक कारखाने का मालिक था,

तीसरा एक आँफ़-ड्यूटी सिपाही था, चौथा एक साम्प्रदायिक संस्था का स्थानीय नेता था।

बहरहाल, दोनों भाइयों ने गोमती का पूर्ण बहिष्कार कर रखा था और वह बिचारी अपने-आप में घुल चुकी थी। वह खोई-सी, गुमसुम-सी रहती थी। उसने तोड़ना-फोड़ना, रोना-धोना सब बन्द कर रखा था। सहदेव के लिए यह स्थिति अनुकूल थी। पहले जब कभी वह लिखने-पढ़ने बैठता तो गोमती चली आती और अपना रोना रोने बैठ जाती थी। सहदेव का मूड बिगड़ जाता था और वह कुछ कर न पाता था। लेकिन अब गोमती की मौत-सी चुप्पी उसे रुचिकर थी। अब वह निर्विघ्न अपनी कल्पना में विचर सकता था।

एक दिन सहदेव बड़े इत्मीनान के साथ डायरी लिखने बैठा था कि किसी ने कमरे का दरवाजा खटखटाया। वह समझा, गोमती भाभी का मौन भंग हुआ और फिर वही शिकवा-शिकायत का दौर शुरू हुआ। लेकिन नहीं वह तो एक नौकरानी थी जिसने आकर खबर दी कि गोमती ने खून की उलटी की थी। सहदेव का फिर भी यही ख्याल था कि गोमती ने अपना क्षोभ प्रकट करने के लिए बीमारी का जरिया अपनाया था। हो सकता था ऐसा ही हो, लेकिन गोमती ने कोई मामूली बीमारी न अपनाई थी। उसे तपेदिक था और वह भी काफी आगे बढ़ चुका था।

अब वह अकेली अपने बिस्तरे पर पड़ी रहती, सहदेव अपनी डायरी लिखने में लगा रहता और बलदेव रुपया कमाने में।

लेकिन कभी-कभी सहदेव शिष्टता के नाते गोमती के पास बैठ जाता था और उसकी बातें सुना करता। वास्तव में वह कभी भी गोमती की बातें पूरी तरह न सुनता था क्योंकि उसका दिल-दिमाग हमेशा अपनी कहानियों और अपने दिवास्वप्नों में ही उलझा रहता था। उन दिनों उसने एक उपन्यास लिखने का साहसिक कार्य आरम्भ कर रखा था। न जाने कितनी अधूरी शुरुआतों के बाद भी वह सही मानों में शुरू न हो पाता था। वह हर रोज दस-बीस पृष्ठ लिखकर रख देता और दूसरे दिन

जब उन्हें पढ़ता तो वे फीके, झूठे नजर आते। कभी-कभी उसे बहुत निराशा आकर घेर लेती और महान् लेखक बनने का अपना सपना टूटते देखने का साहस न कर पा वह गोमती के पास जा बैठता। यद्यपि गोमती के चारों ओर मौत की छाया थी परन्तु सहदेव को कहानीकार के रूप में अपनी मृत्यु की अपेक्षा अपनी भाभी की शारीरिक मृत्यु सहनीय थी। वह गोमती के दुख-दर्द में साथ देने के लिए नहीं, महज अपने मन-बहलाव के लिए उसके पास बैठता था।

सहदेव ने आखिर तक न जाना कि उसकी मीठी बोली, जो सिर्फ दिखावे को ही थी, गोमती पर कितना अच्छा असर करती थी। वह अपने भूले बचपन, अपनी बीती जवानी के बारे में बोलने लगती थी। जब एक दुखी व्यक्ति अपने जीवन के सुखी क्षणों को याद करता है तो उन्हें सुनना एक विशेषाधिकार है, विशेषतः एक उपन्यासकार के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन, सहदेव तो अपने सामने घटने वाली जीती-जागती कहानी को छोड़ अपनी कल्पना में और दूसरों की लिखी हुई किताबों में अपनी कहानियां ढूंढ़ता था।

एक दिन सहदेव को गोमती के पलंग की चादर बदलनी पड़ी। गोमती बिचारी उठ न सकी। उसने अपने दोनों हाथ मायूसी के साथ ऊपर उठा दिये। वह चाहती थी कि सहदेव उसे गोद में लेकर आरामकुर्सी पर लिटा दे। सहदेव ने अनिच्छापूर्वक उसे अपनी बांहों में उठा लिया और सहदेव की गरदन में हाथ डाल वह मुस्करा उठी।

"मुस्कराने की क्या बात हुई, भाभी ?" सहदेव ने पूछा।

"एक सपना देखा था," वह बोली, "वही याद आ गया।"

उसने वह सपना कई बार पहले भी देखा था, परन्तु गोद में उठा ले चलने वाले अज्ञात नायक का मुँह हाथों से टटोलने पर भी वह देख न पाई थी। गोमती ने यह स्वप्न अपने विवाह के कुछ वर्षों बाद ही पहली बार देखा था, और अब जब कि वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी, वही स्वप्न रह-रहकर उसे दिखाई देने लगा था। वह आता, वह अज्ञात वीर,

जिसका मुँह गोमती कभी न देख पाई थी और उसे अपनी बलिष्ठ बांहों में भरकर चल देता। शुरू में गोमती यह सपना देखकर घबराई थी। वह रोने-चिल्लाने हाथ-पैर पटकने लगी थी, किन्तु उस अदृश्य लौह मूर्ति पर कोई प्रभाव न पड़ा और न रास्ता चलने वाले लोगों ने ही कोई ध्यान दिया। जब यह स्वप्न दुबारा दिखाई दिया तो गोमती ने अपने परिचित परिवाहक की बाँहों से बचने की कोशिश न की। उसकी साँसें अपने मुँह पर पड़ने दीं। गोमती के जीवन की मरुभूमि में उस स्वप्न के कुछ क्षण ही एकमात्र सुखद क्षण थे। सहदेव को अपना सपना सुनाते हुए उसकी बुझी आँखों में एक बार फिर चमक आ गई। सहदेव को गोमती की केवल यही एक बात याद रही और वह अक्सर इस स्वप्न का अर्थ जानने का यत्न किया करता था।

कुछ दिनों बाद बलदेव ने गोमती के लिए एक डाक्टर तय कर दिया जो प्रायः हर दूसरे रोज आकर दवा दे जाता था। एक नर्स भी थी जो चौबीसों घंटे उसकी तीमारदारी में रहती थी। सहदेव बाजार से हर रोज नियमित रूप से अनार-अंगूर ले आता था। बलदेव भी सुबह नर्स को बुलवा मरीज की खबर पूछ लेता था।

अंत में एक दिन इस क्रम का भी अंत आ गया। गोमती अपनी मौत से काफी पहले ही आँखें मूंदकर गुम हो गई। सहदेव और बलदेव ने उसे मरा जान धरती पर लिटाने के लिए अपनी दोनों बाँहों में उठा लिया। तभी गोमती ने आँखें खोल दीं, मानो अचानक उसका स्वप्न टूटा हो। उसकी वे आँखें दो आँसू बहाकर फटी की फटी ही रह गईं।

गोमती मर गई। दोनों भाई उसे फूंक आये। घर पहुँचकर दोनों ने राहत की साँस ली। साबुन मल-मल दोनों खूब नहाये। रात को उन्होंने एक साफ सुथरे रेस्तरां में खाना खाया। बलदेव ने कुछ शराब पी। सहदेव ने भी साथ दिया। गोमती की मृत्यु ने दोनों भाइयों को परस्पर निकटतर ला दिया।

गोमती की मौत के बाद बलदेव ने तुरन्त ही एक नया फ्लैट किराये पर लिया और उसे फर्निश कराने में बहुत काफी रुपये खर्च कर डाले। अब उसके पास पुरानी फोर्ड नहीं, बल्कि एक नई डान थी क्योंकि वह नौकरी छोड़ अपना निजी काम करने लगा था। वह अपने नये फ्लैट में खुश था। .अक्सर सुबह देर तक बिस्तरे में पड़ा रहता और कभी-कभी सहदेव से किसी फिल्म या उपन्यास की कहानी सुन लेना उसे पसन्द था। शाम को भी वह दिन छिपे घर लौट आता और अक्सर अपने साथ एक-दो नये मित्र लाता। वे सब मिलकर कभी व्यापार-वाणिज्य, कभी अंतर्राष्ट्रीय और स्थानीय राजनीति या कभी-कभी फिल्मों की चर्चा करते थे।

किन्तु अधिकांशतः उनकी वार्ता का विषय स्त्री-भोग होता था। वे उन मोहल्लों का जिकर करते जहां भोगनीय स्त्रियां मिलती थीं, और चूंकि वे मोहल्ले सबके जाने-बूझे वेश्याओं के मोहल्ले न होकर, सभ्य, संभ्रांत नागरिकों के होते थे। बलदेव को मित्रों की कलकत्ता शहर की गहरी जानकारी देख आश्चर्य होता था। उनका सम्पर्क केवल देशी स्त्रियों से ही नहीं, विदेशी स्त्रियों से भी था, और वे कभी एंग्लो-इंडियन, कभी चीनी और कभी हबशी औरतों की आदतों और उनकी शारीरिक विशेषताओं की व्याख्या करते थे।

सहदेव भी इस प्रकार के वार्तालाप में भाग लेने लगा था, यद्यपि वह बोलता ज्यादातर तभी था जब कि वह अपने बड़े भाई के साथ अकेला होता। बलदेव ने छोटे-मोटे मजाकों के बीच सहदेव

को यौवनावस्था की शारीरिक और मानसिक मांगों की ओर बारबार इशारा करके उसे अपने लैंगिक अनुभवों के बारे में बोलने के लिए तैयार किया था। सहदेव ने भी अपने पिछले जीवन में कई लड़कियों से रिश्ता जोड़ा था, जिसका सबूत उसकी डायरी के शुरू के पत्रों से मिल सकता था। यद्यपि उसका प्रेम काव्यात्मक भावना के उच्च मंडप से नीचे उतर गद्यात्मक सम्पर्क की गन्दी गली में कभी नहीं आया था, पर क्योंकि वह जानता था कि उसका बड़ा भाई प्रेम में भावुकता की अपेक्षा मांसलता का अधिक पक्षपाती था, और अब चूंकि अपनी भी उसकी यही राय हो गई थी, वह अपने भाई को मांसल प्रेम की मनगढ़ंत कहानियां सुनाकर खुश कर लेता था।

बलदेव के साथ घर आने वाले दोस्त अपने प्रिय विषय पर वार्तालाप करते हुए ज्यादातार उन लड़कियों का फख्र के साथ जिक्र करते थे जिन्हें उन्होंने बहुत ऊंची कीमतों पर हासिल किया था। उनका ख्याल था कि हर चीज की एक कीमत है। वह कीमत जो हमेशा रुपयों में ही होती थी, अदा करने पर उसे पाया जा सकता था। सहदेव को यह बात अव्यावहारिक प्रतीत होती थी, लेकिन बलदेव के मित्रों ने उसे आश्वस्त कर दिया कि अगर वे चाहते तो लाट साहब की बेटी को भी पा सकते थे। बलदेव की मौन मुस्कान से भी इस बात की पुष्टि होती थी।

बलदेव के घनिष्ठ मित्रों में मोरनिया नामक एक व्यक्ति था। वह चार, सवा चार फुट से ज्यादा लम्बा न होगा। जब वह बोलता तो उसके मुंह से थूक उचटता और उसकी भाषा तो कोई भाषा ही न थी—बंगला, उड़िया, हिन्दी, हिन्दुस्तानी, राजस्थानी उसे कुछ भी कहना मुश्किल था।

सहदेव को अपने बड़े भाई के साथ मोरनिया की दोस्ती भाती थी। कहां बलदेव लम्बा-चौड़ा, गोरा-उजला और कहां मोरनिया छछूंदर सा। कहां बलदेव पढ़ा-लिखा और उच्च कुल का, और कहां मोरनिया

अनपढ़ पंसारी-सा। लेकिन बलदेव हमेशा उसीकी तारीफ किया करता था मानो वही उसके भावी जीवन का आदर्श हो।

आखिर, एक दिन सहदेव नशे में कह ही बैठा, "भाई साहब, आपको तो आई० सी० एस० अफसर होना चाहिए था। तब आपके आगे-पीछे लाल वर्दी पहने चपरासी होते और बात-बात में सलाम ठोकते। अब आपको चाहे कितना ही रुपया क्यों न मिल जाय, मोरनिया जैसे लोगों की संगति करनी पड़ती है।"

"अरे आई० सी० एस० को तू बहुत बड़ा समझता है, पागल," बलदेव ने तिरस्कार भरी मुस्कराहट के साथ कहा। "उसे क्या मिलता है? यही हजार, दो हजार रुपया महीना और हर साल उसकी एक नियत मिकदार में तरक्की होती है।"

"लेकिन उसके पास ताकत होती है," सहदेव बोला, "हमारे पुरखे राजपूतों के पास ताकत थी हालांकि उनकी जागीरों में उनसे भी ज्यादा मालदार बनिये रहते थे। वे उस ताकत से जब जितना चाहे रुपया पा लेते थे।"

"तुमने ठीक ही कहा है," बलदेव ने उत्तर दिया, "लेकिन अब वह पुराना सामन्तशाही जमाना चला गया और पूंजीवादी युग आया है। आज ताकत से रुपया नहीं कमाया जाता बल्कि रुपये से ताकत कमाई जाती है। मोरनिया को तुम मामूली आदमी समझते हो, लेकिन वह एक दर्जन आई० सी० एस० अफसरों को खरीद सकता है।"

बलदेव का तर्क कम से कम सहदेव के लिए सदा ही अकाट्य होता था। यद्यपि बलदेव ने अर्थशास्त्र और समाज-शास्त्र न पढ़ा था, लेकिन समाज के परस्पर सम्बन्धों को वह खूब समझता था। सहदेव अपने बड़े भाई से बहस में कभी नहीं जीता। दरअसल, सवाल हार-जीत का कभी था भी नहीं क्योंकि बलदेव महज बहस के लिए ही बहस न करता था बल्कि दुनिया के हर सवाल को अंकगणित का एक सवाल समझ उसे हल करने की स्वयं में सामर्थ्य देखता था। बलदेव की कही हुई हर बात बहस का

विषय न बन, एक स्वयंसिद्ध बात बन जाती थी, जिसे सहदेव को मानना ही पड़ता था।

मोरनिया के बारे में कही हुई बलदेव की बात इतनी तर्कयुक्त, इतनी बुद्धिसंगत थी कि वह सहदेव के मन में बैठ गई। वह मोरनिया से नफरत करने की बजाय उसे सराहने लगा। अब सहदेव को मोरनिया के पिचके चेहरे में मर्दानगी दिखाई देने लगी। मोरनिया हर रोज अपने ऊपर १०० रुपये खर्च करता था और इस बात ने सहदेव को बहुत प्रभावित किया। उसे हर रोज एक नई औरत चाहिए थी, और उसे सहदेव ने मोरनिया की कमजोरी न समझ उसकी मर्दानगी की निशानी ही समझा। वह एक बार में एक बोतल शराब पी सकता था, और यह सहदेव के लिए मर्दानगी का सबसे बड़ा सबूत था। वह दिनभर में पचास सिगरेट का टिन खत्म कर देता था, और यही सहदेव के उपन्यास के नायक का गुण था।

एक दिन सहदव रात को सिनेमा देखकर जब घर लौटा तो उसने ड्राइंग रूम में बलदेव और मोरनिया को बैठे पाया। उनके सामने शराब की बोतल थी और वे किसी के इन्तजार में थे। बलदेव के सामने सब तरह की अच्छी-बुरी बातें करने से अब सहदेव को संकोच न होता था और बलदेव के सामने शराब पीना तो उसने गोमती की मौत के बाद ही शुरू कर दिया था। अतः वह भी उन दोनों के साथ बैठ अज्ञात व्यक्ति की प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ देर बाद बाहर दरवाजे की घण्टी बजी। मोरनिया उठ खड़ा हुआ और लड़खड़ाती जबान में बोला, "वह आ गई।"

वह एक सभ्य, सुन्दर लड़की थी। उसके साथ आया हुआ व्यक्ति भी एक सभ्य, सुसंस्कृत आदमी था और बड़ी शिष्टता के साथ बातें करता था। कुछ देर तक मौसम की तबदीली की बात कर वह साथ आने वाला व्यक्ति उठ खड़ा हुआ। बाहर बारिश हो रही थी और वह ज्यादा देर रुकना न चाहता था। मोरनिया ने सहदेव की तरफ इशारा

करके एक और गिलास लाने को कहा और उसमें थोड़ी-सी शराब ढाल उस आदमी की ओर बढ़ा दी। वह एक ही घूंट में उसे उँड़ेलकर और नमस्कार करके चल दिया।

लड़की अपनी जगह बैठी-बैठी सिकुड़ गई। वह बड़ी भोली, बड़ी सुकुमार थी। सहदेव के ख्याल में उसे एक छोटे से बच्चे की तरह पुचकार कर, सहलाकर प्यार करना उचित था। उसके वे दोनों हाथ, जो उसकी गोद में एकसाथ जुड़े रखे थे, सहदेव को एक खूबसूरत कबूतर-से लगे। लेकिन मोरनिया ने उन हाथों को इस तरह पकड़ा कि मानो कबूतर के कण्ठ पर उसका अंगूठा हो। बलदेव और सहदेव की आँखें आपस में मिलीं। बलदेव का चेहरा अचानक कुछ गम्भीर-सा दिखाई दिया। सहदेव कुछ समझ न पाया। वह चुपचाप उठकर अपने कमरे में चला गया। शायद यही बड़े भाई की मंशा थी।

बलदेव और मोरमिया कम्पनी का कारोबार रात के तीसरे पहर तक चलता रहा, और जब वे सोये तो उनके खुर्राटों का बोध उनके अन्दर समाये पशुओं का आह्लाद-सा प्रतीत हुआ। सहदेव भी सारी रात सो न सका और खुर्राटों की बढ़ती रफ्तार के बीच नींद लेना उसके लिए दुश्वार हो गया। वह बहुत देर तक अपने बिस्तर पर पड़ा बलदेव और मोरनिया के अन्दर समाये हुए पशु की सराहना करता रहा, क्योंकि वह महसूस करने लगा था कि किसी भी स्वस्थ पुरुष में पशु का होना स्वाभाविक ही है।

लड़की का नाम पुष्पलता था और वह उस भले आदमी की बीवी थी जो पिछली रात बलदेव के यहां उसे छोड़ गया था। वह एक बैंक में क्लर्क था और अपनी थोड़ी तनख्वाह में गुजारा न कर पा, मोरनिया जैसे दोस्तों की हमदर्दी पर चलता था। सुबह होने से पहले ही वह पुष्पलता को अपने साथ लिवा

सुबह के प्रथम प्रकाश में सहदेव ने यह भी मान लिया कि ताकत से रुपया नहीं बल्कि रुपये से ताकत आती है। और रुपया चालाकी से आता है और उस चालाकी को, जिसे समझदारी भी कहा जाता है, रुपया कमा लेने के बाद पुरुषार्थ कहा जाता है।

काफी दिन चढ़ आया। मोरनिया सोकर उठा तो उसकी धँसी हुई आँखों और पिचके हुए चेहरे में सहदेव ने एक नई मर्दानगी देखी। उसे अपना बड़ा भाई बलदेव तो चिर कुमार-सा लगा जिसका काम ही नित्य-प्रति नई विजय प्राप्त करना हो। उन दोनों मर्दों की सोहबत से, खासतौर पर गत रात की उसकी साहसिक यात्रा में पांचवें सवार का पार्ट अदा करने से सहदेव स्वयं में भी एक नई मर्दानगी महसूस करने लगा था।

दूसरे दिन रविवार था। मोरनिया और बलदेव करीब ग्यारह बजे सोकर उठे। दोनों ने एकसाथ चाय पी, लेकिन दोनों के बीच बातचीत बिल्कुल न हुई। दोनों थके हुए और एकदूसरे से कुछ खीझे हुए नजर आए। वे अपने सामने अखबार के पन्ने रख चुपचाप चाय पीने लगे। कुछ देर बाद मोरनिया उठा और नहा-धो कपड़े पहनकर बाहर चला गया। बलदेव फिर अपने बिस्तरे पर पड़कर सो गया और दिन के तीन बजे तक सोता रहा।

उस दिन बलदेव अपनेको शरीर से ही नहीं मन से भी बहुत भारी महसूस कर रहा था। वह उन लोगों में से था जो अपनी गलतियों को सुधारने तथा अपनी शक्तियों का सदुपयोग करने में सदा लगे रहते हैं। वह जानता था कि अगर उसे कुछ हासिल करना है तो इस तरह की अय्याशी ज्यादा दिन नहीं चल सकती।

"आज आप बहुत उदास नजर आते हैं ?" सहदेव ने पूछा।

"सोच रहा हूं कि जो कुछ कल रात हुआ, अच्छा न हुआ। अपने घर में बाहर की गन्दगी लाना घर की पवित्रता नष्ट करना है। कम से कम जब गोमती जीवित थी, ऐसा कभी न हो सकता था। मैं बाहर चाहे कुछ भी कर लेता, मुझे अपने घर की पवित्रता का हमेशा ख्याल रहता था।"

"भाई साहब," सहदेव बोला, "वास्तव में घर वही है जहां गृहिणी है। छोटी मुंह बड़ी बात तो है, लेकिन अब आपको शादी कर लेनी चाहिए।"

"नहीं, भाई। एक दफा शादी करके देख ली। अब दुबारा मुसीबत में नहीं फँसना चाहता। शादी अब मैं कभी न करूंगा।" लेकिन तू," एक नये विचार से बलदेव की आँखें चमकने लगीं : "क्यों, तू शादी क्यों नहीं कर लेता ?"

"मैं·· मैं," सहदेव की जबान लड़खड़ा गई। "मैंने अभी तक एक पैसा तो कमाया नहीं और मैं शादी कर लूं। यह कैसे हो सकता है !"

"पैसे की तुझे क्या फिक्र है ? जितना पैसा चाहिए मुझसे ले। मैंने तुझे कलकत्ता इसीलिए तो बुलाया था कि मैं यहां अकेला था। गोमती का होना न होना कोई मतलब न रखता था, तेरे आने से मुझे बहुत सहारा मिला है। अब अगर तू शादी कर ले तो यह घर पूरी तरह आबाद हो जाय। तेरी बहू आएगी, मैं उसके लिए दुनिया की अच्छी से अच्छी चीज लाकर दूंगा। तेरे बच्चे होंगे और मैं उन्हें गोद में लेकर खिलाऊंगा और उन्हें योरुप पढ़ने भेजूंगा और मेरे मरने के बाद सब-कुछ तेरा और तेरे बच्चों का होगा।"

सहदेव द्विविधा में पड़ गया। उसने अभी तक यह कभी न सोचा था कि उसकी भी शादी हो सकती है। उसे कभी भी बहू-बच्चों की ख्वाहिश नहीं हुई और वह बोल उठा, "भाई साहब, शादी आपको ही करनी चाहिए। बाल-बच्चों की आपको जरूरत है मुझे नहीं।"

"तो रहने दो इस घर को उजाड़। खर्च होने दो मेरी गाढ़ी कमाई रेडियो और शराब की बोतलों पर।" बलदेव ने गरजकर कहा। उसकी मुखाकृति से मालूम होता था कि उसने यह बात मजाक में या फर्जी गुस्से में कही थी।

"भाई साहब," सहदेव बोला, "मैंने अभी तक इस बारे में कभी सोचा नहीं। मुझे सोचने का मौका दें।"

"अगर मान लो मैं अपनी शादी कर लेता हूं," बलदेव ने अपने छोटे भाई को समझाने के लिए एक दूसरा तरीका अख्त्यार किया, "तो जानते हो क्या होगा ? एक नई औरत घर में आएगी। कुछ दिन वह

चुपचाप रहेगी। बाद में, जब कि वह पूरी तरह घर की मालकिन बन चुकेगी तो मुझसे पूछेगी, 'क्यों जी, तुम्हारा छोटा भाई बड़ा निठल्लू है। कोई काम क्यों नहीं करता ? ऐसे कब तक चलेगा ?' फिर वह तुम्हारे और मेरे बीच फर्क डालने की कोशिश करेगी। फिर उसके बच्चे होंगे और अपने-पराये की उसकी भावना और भी ज्यादा हो जाएगी।"

सहदेव ने इस पहलू पर कभी गौर न किया था लेकिन एक बात साफ थी कि वह अपने भाई और अपने बीच किसी भी तरह की दीवार न आने देना चाहता था। उसने कभी कल्पना भी न की थी कि दुनिया की कोई भी ताकत उसे अपने बड़े भाई से जुदा कर सकती थी। यदि उसके वश में होता और वह स्त्री बन सकता तो शायद वह स्वयं ही अपने बड़े भाई से शादी कर इस संशय को हमेशा के लिए मिटा देता। उसके अपने भावी जीवन की कल्पना इसी विश्वास के आधार पर थी। महान् लेखक बनने के मंसूबे इसी बिना पर बांधे थे कि उसका बड़ा भाई उसके अपने व्यक्तित्व का विकसित अंग या सही तौर पर वही अपने बड़े भाई के शरीर का एक अविच्छिन्न अंग बन चुका था। उसे बड़े भाई के लिए छोटे-मोटे काम करते रहना पसन्द था। कई दफा भाई की मैली बनियान धो देना, भाई के हाथ-पैर के नाखून काट देना या रविवार के दिन भाई के शरीर में तेल-मालिश करना उसे पसन्द था। लेकिन वह जानता था कि वे क्रियाएं किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में न हो सकती थीं। अगर बड़े भाई ने शादी कर ली तो उसकी बीवी यह कभी बरदाश्त न करेगी कि उसका निकम्मा देवर उसके पति के साथ हमेशा चिपका रहे।

"क्या सोच रहे हो सहदेव ?" बलदेव ने यह इस प्रकार कहा मानो वह उसी समय सहदेव का निर्णय जानना चाहता हो, "अब यह सोचो कि मेरी बजाय अगर तुम्हारी शादी हो जाय तो सूरत क्या होगी। तुम्हारी बीवी आएगी, घर बसेगा। मुझे भी बड़प्पन के खातिर एक आदर्श तरीके से घर में पेश आना होगा। यह बहुत जरूरी है—जिस घर में

घर जैसी व्यवस्था नहीं वहां कभी भी तरक्की नहीं हो सकती।"

यद्यपि सहदेव अभी इस विषय में कुछ निर्णय न कर पाया था, पर बड़े भाई के प्रस्ताव की उदारता से वह अभिभूत हो चुका था। वह किंकर्तव्यविमूढ़ बना चुपचाप खड़ा रहा।

"मैं तुम पर दबाव नहीं डालना चाहता," बलदेव कह रहा था, "लेकिन अगर तुम, दरअसल यह जानना चाहो कि मुझे सुख किसमें मिलेगा, तो मैं कहूंगा कि तुम शादी कर लो।......फिर भी मैं कोरे अपने स्वार्थ के लिए यह नहीं कहता। मैं तुमसे दस-बारह साल बड़ा हूं। पिछले बीस साल से स्त्रीभोग करता आया हूँ। अब मुझे इन बातों में ज्यादा दिलचस्पी नहीं। लेकिन तुम्हें क्या हो गया, तुम तो नये जवान हो ? क्या तुम अपने लिए शादी की जरूरत महसूस नहीं करते ?"

सहदेव फिर भी मौन बना खड़ा रहा। लेकिन उसका दिमाग बड़ी तेजी से दौड़ रहा था। अभी तक किसी भी स्त्री के साथ उसका शारीरिक सम्पर्क न हुआ था; जो कुछ हुआ था वह बातों में ही या खामखयाली में हुआ था। यद्यपि उसने अपने बड़े भाई को खुश करने के लिए यौन प्रेम की बहुत सी मनगढ़न्त कहानियां सुनाई थीं किन्तु उसका अपना निजी अनुभव शून्य था।

सहदेव का लैंगिक जीवन भी उसके मानसिक जीवन की तरह ही उलझा हुआ था। सहदेव की सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जिस प्रकार वह जीवन के अन्य क्षेत्रों में यह जान न पाया था कि अपने-आपसे क्या चाहता है, जैसे कि साहित्य में सुस्पष्ट भावों और विचारों के अभाव में उसकी कोई भी कृति प्रभावोत्पादक न बन पाती थी, उसी प्रकार वह अपने लैंगिक जीवन में भी स्वधर्म को न पहचान अस्पष्ट, अज्ञात और अबोध शक्तियों से बँधा था।

परन्तु वह इतना जानता था कि वह सन्तुष्ट न था। उसकी प्रकृति उसे तरह-तरह के रास्तों पर ले जाती थी। पिछले एक डेढ़ वर्ष के लेखन के प्रयास ने उसमें एक नई चीज पैदा कर दी थी। स्त्री उसे भाने

लगी थी। शायद जिन्दगी अपने अनूठे तरीके से अपनी मांग पेश कर रही थी या शायद साहित्य का स्त्री के साथ कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरा सध नहीं सकता। या शायद मोरनिया और बलदेव की संगति से सहदेव में स्त्री को पाने की यह इच्छा जागी थी और उसकी बातों में तथा उसकी कहानियों से वह परिलक्षित होने लगी थी। कई बार सहदेव को लगता कि जब तक वह किसी स्त्री को पूरी तरह जान न लेगा, अच्छा लेखक कभी न बन सकेगा, और स्त्री को पूरी तरह जानने के लिए सहदेव की परिस्थिति में शादी के सिवाय और कोई जरिया न था। सहदेव को विवाह से लाभ ही था, नुकसान कोई न था। विवाह से उसे एक स्त्री मिलती, उसका तन, मन, धन मिलता, और देना क्या होता? देना क्या हो सकता था यही खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता, घर की सुरक्षा। और ये चीजें तो बड़े भाई की दया से उपलब्ध ही थीं।

लेकिन सहदेव की सबसे बड़ी मुश्किल फिर भी यही थी कि दरअसल वह जान न पाया था कि वह शादी करके क्या पाना चाहता था या दुनिया से क्या पाना चाहता था। जबकि दूसरी ओर बलदेव जानता था कि उसे दुनिया से क्या पाना था, दुनिया में रहकर क्या करना था और यह ज्ञान न सिर्फ दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों को ही प्रभावित करता था, बल्कि स्वयं अपने बारे में उसकी अपनी धारणा को भी प्रभावित करता था। इसी जानकारी ने उसे जीवन पर अधिकाधिक नियन्त्रण पाने में सहायता दी थी। अब वह समाज की दया पर निर्भर न था, बल्कि सामाजिक सम्बन्धों का वह सूत्र उसने पकड़ रखा था कि जिसे खींचने और ढील देने से समाज की गुत्थियां सुलझ जाती थीं, अनिश्चितताएं निश्चितताओं में बदल जाती थीं।

बलदेव को न केवल अपने छोटे भाई के भरण-पोषण का भार ही उठाना पड़ा था, बल्कि उसकी भलाई किसमें है, उसका दिल क्या चाहता है, यह सोचने का भार भी अब उसने अपने कंधों पर ले रखा था। सहदेव भी स्वयं सोचने के भार से मुक्त होकर प्रसन्न था। अगर

कलकत्ता आने के लिए उसका भाई उस पर जोर न देता तो शायद वह अपने निर्णय से कलकत्ता कभी न आ पाता, और अगर कलकत्ता न आता तो यह नई दुनिया उसके सामने कैसे खुलती ? आखिर भाई के निर्णय को ही श्रेय था कि सहदेव एक नई जिन्दगी शुरू कर सका। और अगर अब बड़ा भाई यह उचित समझता है कि सहदेव को शादी करनी चाहिए तो उसे जरूर ही कर लेनी चाहिए थी।

"खैर, छोड़ो इन बातों को इस वक्त," बलदेव बोला, "बाद में अच्छी तरह सोचकर मुझे जवाब देना।"

"मुझे कुछ नहीं सोचना है। सोचना तो आपको है भाई साहब, अगर आप यही ठीक समझते हैं कि आपको नहीं मुझे शादी करनी चाहिए तो ठीक है। जैसा आप उचित समझें करें।"

"शाबाश !" बलदेव ने छोटे भाई की पीठ थपथपाते हुए कहा, "अब देखना, मैं तेरे लिए कैसी अच्छी बीवी लाता हूँ।"

सहदेव नीची नजर किये चुपचाप खड़ा रहा।

एक प्रतिष्ठित राजपूत परिवार की सुकन्या देखने दोनों भाई उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले में पहुंचे। बलदेव ने लड़की के अपार सौंदर्य की चर्चा कलकत्ते के उत्तरप्रदेशीय समाज के दो-तीन सम्मानित लोगों से पहले ही सुन रखी थी, लेकिन जब उसने लड़की को स्वयं देखा तो उसे लगा कि सुन्दरता और आचार-व्यवहार में श्रेष्ठतर युवती उसने पहले कभी न देखी थी। परन्तु वह जानता था कि लड़की की कुलीनता और श्रेष्ठता के बावजूद उसका परिवार आर्थिक दृष्टि से बलदेव की वर्तमान समृद्धि को देखते हुए निम्नस्तरीय था, और यह जानकारी ही बलदेव को सदा बल देती थी।

लड़की का नाम भगवती था। वह बी० एस-सी० पास थी। उसने अपने मकान के पिछवाड़े सैकड़ों क़िस्म के देशी-विदेशी पौधे उगा रखे थे। उसके लिए फूल-पौधे, कीड़े-मकौड़े संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण पदार्थ थे, मानो मनुष्य केवल उन्हें देखने-भालने और सराहने के लिए ही पैदा हुआ हो। वह दूर-दूर से तरह-तरह के पौधे और उनके बारे में तरह-तरह की क़िताबें मँगाया करती थी।

एक दिन सुबह बलदेव और सहदेव भी दो विजातीय पौधों की तरह भगवती के घर की बैठक में आ जमे। बलदेव शार्क स्किन के सूट और लाल टाई में था और पीछे-पीछे सहदेव अमेरिकन फैशन की एक चितकबरी बुश्शर्ट में दुम-सी हिला रहा था।

भगवती दरवाजे की ओट में खड़ी उन्हें देख रही थी। एक दफा जब कि वह बहुत छोटी थी उसके स्वर्गवासी पिता, जोकि अंग्रेजी फौज में

कर्नल थे, जापान से उसके लिए दो गुड्डे लाये थे। एक फौजी अफसर की सूरत का खिलौना था। उसके चेहरे पर रौब था, चाल में अकड़ थी और जब वह चलता तो उसके जूते चर्रमर्र-चर्रमर्र बोलते थे। दूसरा गुड्डा एक सिविलियन था। उसके चेहरे पर एक नम्र मुस्कान थी और वह बार-बार आंखें नीची कर लेता था और जब चलता तो ऐसे धीरे-धीरे पग उठाता मानो बिल्कुल आहट न करना चाहता हो। पिता जी ने दोनों गुड्डे भगवती को देते हुए पूछा था, "बता, तेरे लिए कैसा दूल्हा लाऊं ?"

भगवती ने तब इस बात का निर्णय करना आवश्यक न समझा था, और अब भी उसे इस बात की खुशी थी कि यह निर्णय उसके बड़ों ने अपने-आप ही कर दिया था। उसके चाचा, जो कि आधुनिक ख्यालात के आदमी थे, अगर उससे अपना दूल्हा स्वयं चुनने को कहते तो मुश्किल हो जाती। अगर उसे अपनी फुलवाड़ी के सैकड़ों फूलों में से केवल एक ही फूल चुनने को कहा जाता तो क्या अन्याय न होता ?"

मां ने पीछे से टोका, "वे तुझे देखने आये हैं, न कि तू उन्हें देखने जा रही है। सिर ढक ले और नीची नजर करके बैठना, समझी।"

"हां हां, मालूम है," भगवती ने कहा। यह अपनी मां और अपने चाचा की तरह व्यग्रता या आकुलता अनुभव न कर रही थी। स्थिर कमल की भांति शांतचित्त वह बैठक में चली गई।

सहदेव ने अपनी भावी पत्नी को एक नजर देखा, नमस्कार का उत्तर दिया और आंखें नीची कर लीं। बलदेव पहले की तरह ही लड़की की मां और चाचा से बोलता रहा, हालांकि उसकी आंखें लड़की पर गड़ी थीं।

"तो तुम बी० ए० तक पढ़ी हो ?···आगे पढ़ना चाहती हो ?" बलदेव ने अपनी आवाज में मिठास भरने की पूरी कोशिश करते हुए पूछा।

"अजी अब और क्या पढ़ेगी, सारी जिन्दगी पढ़ती ही तो रही है," लड़की की मां बोली।

"इन्हीं को बोलने दीजिए, नहीं तो कोई समझेगा कि ये गूंगी हैं," बलदेव अपने पिटेपिटाये मज़ाक पर खुद हँस पड़ा, "कहो आगे और पढ़ना चाहती हो ?"

"पढ़ाई तो जिन्दगी के साथ हमेशा चलती ही रहती है," भगवती ने धीरे से कहा।

'खूब कहा,' सहदेव ने मन ही मन दाद देते हुए सोचा—काश, भगवती ने कहा होता : जिन्दगी ही पढ़ाई है तो और भी अच्छा वाक्य बना होता।'

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा," बलदेव बोला, "हमारे घर तुम्हें कोई काम न करना होगा। सारे दिन पढ़ो-लिखो, जो जी चाहे करो।"

"हमें आपके घर के बारे मे सब मालूम है, बलदेव जी," लड़की की मां ने बलदेव की ओर से स्वीकृति पाकर शुभ काम करने में देर न करने के विचार से कहा। "अगर आज लड़की के पिता जीवित होते तो आपके हाथ अपनी लड़की सौंपकर वे निश्चय ही बहुत खुश होते।"

"आपको शायद मेरा पिछला पत्र नहीं मिला जिसमें मैंने लिखा था कि मैं अपनी नहीं, अपने भाई की शादी करना चाहता हूं।" बलदेव ने आखिर अपना ब्रह्मास्त्र चला ही दिया।

"नहीं तो," लड़की के चाचा ने आश्चर्य के साथ कहा, "हमें आपका ऐसा कोई पत्र नहीं मिला। हमने तो आपसे···"

"जानता हूँ," बलदेव ने बीच में रोकते हुए कहा, "लेकिन मुझमें और मेरे भाई सहदेव में कोई अन्तर नहीं। मेरी सारी दौलत मेरे बाद सहदेव के बच्चों को ही मिलेगी। आप बेफिक्र रहें। सहदेव ग्रेजुएट है, लेखक है और जवान है।"

भगवती एकसाथ उठ खड़ी हुई और कमरे से बाहर चली गई।

उसके पीछे-पीछे मां भी। कुछ क्षण बाद चाचा भी कुछ समझ न पा, उठकर बाहर चले गये।

पास के कमरे में तीनों की कान्फ्रेंस बैठी। "गजब हो गया!" चाचा बोला, "हम छोटे भाई से लड़की की शादी नहीं करेंगे।"

"लेकिन अगर रिश्ता तय किये बगैर ये लोग लौट गये तो बहुत बदनामी होगी। न जाने कब से इन लोगों के आने की बातें चल रही थीं। सारी बिरादरी को मालूम है।" मां ने कहा।

"तो फिर क्या किया जाय?" चाचा ने घबराहट के साथ पूछा।

"एक बार और पूछकर देख लो, नहीं तो······"

"नहीं तो क्या छोटे भाई से भगवती को व्याह दोगी?···नहीं यह नहीं हो सकता।"

उधर सहदेव शर्म के मारे धरती में गड़ा जा रहा था। उसका नाम सुनते ही भगवती के उठकर चले जाने से वह आहत था। वास्तव में, वह भगवती को पाने के योग्य स्वयं को समझता भी न था। वह अति सुन्दरी थी और अपने निजी व्यक्तित्व के बल से ऊंचा सिंहासन पा सकती थी, जब कि सहदेव एक अति दुर्बल युवक था जो अपने भाई की मदद के बिना खड़ा तक न रह सकता था। उसने कभी चाहा भी न था कि उसकी शादी हो और अब यह मुसीबत आ पड़ी।

"भाई साहब, घर लौट चलिए या आप शादी कर लीजिए, मुझे नहीं करनी।" सहदेव ने धीरे से भाई के कान में कहा।

"चुप रह। बनी-बनाई बात मत बिगाड़। अभी देखता जा।"

भगवती का चाचा मुंह लटकाये हुए फिर कमरे में आया। बलदेव ने उसे अपने पास बिठा, उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, "आप जानते हैं मेरा एक विवाह हुआ था। दाम्पत्य जीवन का जो कुछ सुख-दुःख देखना था, देख चुका। अब इस प्रपंच में मैं नहीं पड़ना चाहता। आप बाध्य न करें।"

"लेकिन आपने कोई ऐसी प्रतिज्ञा तो नहीं की; अभी आपकी उम्र सैंतीस-अड़तीस से ज्यादा नहीं।"

"एक तरह की प्रतिज्ञा ही है," बलदेव बोला और भीष्म पितामह की भूमिका में अपने-आपको पाकर खुश हुआ। "और यह भी प्रतिज्ञा है कि जब तक मैं जिन्दा हूं, सहदेव और उसकी बीवी-बच्चों को कभी किसी बात की फिक्र न होने दूंगा। यही नहीं, अगर भगवान् ने चाहा तो सहदेव की कई पीढ़ियों तक को रुपया कमाने की फिक्र न करनी होगी।"

भगवती का चाचा फिर सिर खुजाता हुआ अन्दर के कमरे में चला गया। मां-बेटी बलदेव की बातें सुन चुकी थीं और चाचा बिना कुछ बोले ही सिर पकड़ उनके बीच बैठ गया। आखिर भगवती ही बोली, "चाचा, तुम भी बिल्कुल मां की तरह हो। तुम दोनों बड़ी जल्दी घबरा जाते हो। कल शाम से ही ऐसे परेशान हो जैसे कयामत आने वाली हो। मेरे लिए बड़े और छोटे भाई में कोई फर्क नहीं, तुम चाहो जिससे शादी कर दो।"

मां और चाचा दोनों अवाक् रह गये। कुछ क्षणों तक सब चुप रहे। फिर चाचा बोला, "एक बात तो है, इस तरह लड़की दुहेजिए से शादी करने से बच जायगी, लेकिन छोटा भाई अभी तक कमाता-धमाता कुछ नहीं, यही एक कसर है।"

"चाचा, हरेक में कोई न कोई कसर होती है। क्या तुम समझते हो बड़े भाई में कोई कसर नहीं?" भगवती ने स्थिति को काबू करते हुए कहा।

"बेटी," मां बोली, "अगर तू राजी है तो हम भी खुश हैं। हमने तो इनका घर देखा है। घर बहुत अच्छा है, यह हम जानते हैं। और सबसे बड़ी बात तो भाग्य की है।"

बलदेव की हमेशा की तरह जीत हुई। उसने सहदेव को कोहनी मारकर जतला दिया, "देख ले बेटा, कहा था न।"

भगवती की मां चांदी की एक थाली में रुपये और रोली-चावल रख कर ले आई और सहदेव का तिलक कर उसके हाथ में नारियल थमाती हुई बोली, "अब भगवती तुम्हारी हुई। तुम्हारे सिर पर तुम्हारे बड़े भाई की छत्रछाया है पर भगवती को सुखी रखना तुम्हारा ही कर्तव्य है, बेटा।

हमने बड़े लाड-प्यार से लड़की को पाला है।"

दोपहर की गाड़ी से दोनों भाइयों को वापस जाना था। बलदेव ने कहा, "मैं चाहता हूं कि शादी जल्दी हो जाय। अगले महीने कोई मुहूर्त निकलवा लें तो कैसा है?"

"हमें कोई एतराज नहीं। हमारी तरफ से सब तैयारियां पूरी हैं," भगवती की मां ने कहा।" मैं शीघ्र ही मुहूर्त निश्चित कर आपको खबर दूंगी।"

"बहुत अच्छा," बलदेव ने हाथ जोड़ते हुए कहा, "मुझसे कोई गलती हो गई हो तो माफ कीजिएगा। अब हमें आज्ञा दें।"

बाहर आकर सहदेव ने अपने-आपको बहुत भारी महसूस किया। म्युज़ियम की किसी मूर्ति की सराहना करना एक बात है और उसे उठा कर अपने घर ले जाना दूसरी बात है। बहरहाल, जो होना था सो हो गया। लेकिन फिर भी सहदेव को आश्चर्य था कि यह सब हो कैसे गया।

बलदेव ने सहदेव की पीठ थपथपाते हुए कहा, "बोल भाई, बाजी मार ली न! अगर तू चिराग लेकर भी ढूंढ़ता तो ऐसी खूबसूरत बीवी न मिलती।"

सहदेव सोचने लगा कि क्या दरअसल भगवती बहुत खूबसूरत है, और एकसाथ उसे ऐसा लगा कि वह भगवती की सूरत भूल गया, उसके दिमाग में सिर्फ भगवती के चेहरे की अस्पष्ट-सी रूपरेखा रह गई। अगर उस वक्त कोई उससे पूछता कि भगवती की नाक लम्बी थी या चपटी, उसकी भौंहें गहरी थीं या हलकी, या उसके बालों का रंग कैसा था, तो शायद वह न बता पाता।

"अच्छा, भाई साहब," उसने पूछा "वे लोग तो आपसे शादी करना चाहते थे, मुझसे नहीं। आपने उन्हें धोखा देकर अच्छा नहीं किया।"

"वे क्या चाहते थे, इससे हमें क्या मतलब? असली बात तो यह है कि जो हम चाहते थे वही हुआ।" बलदेव ने जेब से सिगरेटकेस निकालते हुए जवाब दिया।

सहदेव यह न जानता था कि जो व्यक्ति सांसारिक सफलता-प्राप्ति के संघर्ष में रत होता है उसे दूसरे लोग अपने में सम्पूर्ण मानव न दिखाई देकर अपने प्रतिद्वन्द्वी दिखाई देते हैं या ऐसे साधन के रूप में दिखाई देते हैं जिन्हें वह अपने काम में ला सकता है। वह समझता है कि जिन्दगी अंकगणित के एक प्रश्न की तरह है जिसे उचित सूझबूझ से सुलझाया जा सकता है। और हर वस्तु, हर स्त्री को प्राप्त किया जा सकता है। यही बात बलदेव के मोरनिया जैसे साथी सहदेव को समझाते आये थे, और अब बलदेव ने उसे प्रत्यक्ष रूप में प्रमाणित कर दिखा दिया था।

"विवाह एक दायित्व है। दायित्व की पूर्ति से विवाह वरदान और अपूर्ति से अभिशाप बन सकता है।" यह वाक्य सहदेव ने अपनी डायरी में अपने विवाह के बहुत दिनों बाद जाकर लिखा। यद्यपि विवाह के बाद से ही वह नारी को समझने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील था लेकिन उसने नारी को समझने के लिए अपनी पत्नी से घनिष्ठता न बढ़ा, हमेशा की तरह अपनी डायरी की शरण ली।

सहदेव का यह पुराना तरीका था। जब-जब उसने किसी स्त्री से प्रेम किया, जब-जब उसने कोई नया संकल्प, नया संघर्ष आरम्भ किया उसने अपनी डायरी की शरण ली। उसने एक उपन्यास लिखना शुरू कर रखा था। उपन्यास के कुछ ही पन्ने लिखे गये थे मगर उपन्यास के बारे में बहुत-कुछ डायरी में लिखा जा चुका था। उन दिनों वह नारी को समझने के लिए अपनी डायरी के अधिकाधिक पन्ने अधिकाधिक जोश के साथ भर रहा था।

उसने लिखा था : "शुरू में मेरा ख्याल था कि बीवी एक आम के पेड़ की तरह है, चाहो आम खाओ, चाहो मत खाओ। लेकिन धीरे-धीरे मैं महसूस करने लगा हूं कि अगर किसी मूर्त वस्तु से पत्नी की तुलना करनी हो तो उस दीवार-घड़ी से की जा सकती है जिसकी टिकटिक तभी सुनाई देती है जब कि आदमी अपने-आप में अकेला हो और घड़ी की सुइयां घूमती तो केवल तभी दिखाई देती हैं जब कि मनुष्य एकाग्रता-पूर्वक उसे देखता रहा हो......। वैसे यह सही है, हमारे सामने ही, कहीं दूर नहीं, वह हमारे सामने बैठी हमसे आंख-मिचौनी खेल रही है।

इस तरह की बातें लिख सहदेव अपनी मूर्त मांसल पत्नी को एक अमूर्त, काल्पनिक रूप में देखने लगा था। उसके लिए पत्नी का केवल एक ही उपयोग था। कलकत्ता आने से पूर्व वह अपने व्यक्तित्व में विश्वास खो बैठा था और उसकी एकमात्र समस्या अपने-आपको निरन्तर यह भरोसा दिलाते रहना था कि उसका भी अस्तित्व है। बलदेव के रूप में एक सफल, सुन्दर भाई और भगवती के रूप में एक सुन्दर, सुगढ़ पत्नी पाकर वह अपने-आपको यही आश्वासन देना चाहता था कि उसका भी अस्तित्व है। सच पूछो तो साहित्य-सृजन का प्रयास भी सहदेव के लिए अपने अस्तित्व की प्रामाणिकता सिद्ध करने का ही एक साधन था।

सहदेव ने अपने हीनभाव को अपनी शक्ति बनाना चाहा था। जिस समय उसने अपने बड़े भाई का आश्रय स्वीकार किया था उसे तुरन्त ही अपने हीनभाव का बोध हुआ था, लेकिन चूंकि वह उसका भाई था और हीरो था, इसलिए सहदेव ने सोचा, 'अहं अस्मि'।

इसी प्रकार जब सहदेव विवाह की वेदी पर बैठा था और जब मंत्रोच्चारण के बीच भगवती की लाल हथेली सहदेव के शुष्क हाथों में थमा दी गई तो उस क्षण सहदेव ने अपने हाथ को और फलस्वरूप अपने-आपको हीन पाया था। लेकिन चूंकि भगवती का हाथ बहुत सुन्दर था और वह सहदेव की बीवी बन चुकी थी, सहदेव ने सोचा, 'ठीक है। मैं हूं। इतनी सुन्दर बीवी का पति बनना ही साबित करता है कि—मैं हूं : मेरा अपना अस्तित्व है।'

सहदेव ने अपने कालेज जीवन में एक दार्शनिक के बारे में पढ़ा था जो कहा करता था : "मैं सोचता हूं, अतः मैं हूं", और सहदेव भी हर चीज पर अपनी मौलिक राय व्यक्त कर अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर लेता था, जैसे कि वह यह बताने में कभी न चूकता था कि उसे फ़लां किस्म की शराब पसन्द आती है, कि वह सिर्फ फलां होटल में खाना पसन्द करता है, मानो वह इस बहुमूल्य खोज को दूसरों के दिल

में बिठाकर अपना अस्तित्व सिद्ध करना जरूरी समझता हो।

सच तो यह है कि सहदेव जिन्दगी में गोता लगाने से डरता था और जिन्दगी उसे सराबोर करने को उतावली हो रही थी। वह उसके कंठ के नीचे उतरना चाह रही थी, और सहदेव हर बार उसे उलट देता था। लेकिन फिर भी जिन्दगी के घूँट के कुछ कतरे उसके भीतर पहुँचने लगे थे। भगवती के स्पर्श ने उसके जीवन में एक परिवर्तन ला दिया था, यद्यपि वह मात्र स्पर्श ही था, जिन्दगी का वह पूरा घूँट न थी जो इन्सान का रंग-रूप बदल देता है, जो एक छोटे-से बीज को बड़ा वृक्ष बना देता है।

हर अभागा आदमी अपनी सफलता के मार्ग में स्वभाववश कुछ ऐसी बाधाएँ खड़ी करके देता है, जिन्हें पार करके वह सफलता तक कभी नहीं पहुँच सकता। सहदेव ने भी अपने और भगवती के बीच कुछ ऐसी ही बाधाएं खड़ी कर रखी थीं। मालूम नहीं क्यों, वह कभी भी भगवती को खुलकर पूरी तरह प्यार न कर पाता था। न जाने कौनसी विवशता बीच में बाधा बनकर आ जाती थी और वह क्षुब्ध हो जाता, भगवती भी क्षुब्ध हो जाती।

भगवती जानती थी कि उसका पति सामान्य नववधू को आकर्षण का केन्द्रबिन्दु नहीं बना सकता। वह कलाकार था और उसके लिए अपनी कला पत्नी से अधिक नहीं तो कम से कम बराबर महत्त्व जरूर रखती थी। लेकिन कई बार भगवती यह देखकर परेशान हो जाती कि उसका पति उससे कुछ कहना चाह कर भी कुछ कह न पाता और डायरी लिखने बैठ जाता। यदि भगवती की जगह और कोई स्त्री होती तो निश्चय ही वह अपने पति की डायरी को अपनी सौत समझती। लेकिन भगवती ने ऐसा नहीं किया। उसके लिए ऐसा करना जरूरी भी न था।

भगवती को भगवान् ने अपूर्व सौन्दर्य दिया था। उसका धवल वक्ष और संगमरमर से तराशी हुई उसकी चिकनी बांहें मानो किसी दैव

पुरुष के साथ बैठकर दावत खाने के लिए हों लेकिन बदकिस्मती से वह ऐसे गये-बीते लोगों की दावत में आ पहुँची जहां कि पुराने कपड़े पहनने से भी काम चल सकता था—आम तौर पर भगवती की स्थिति में कोई भी स्त्री यही सोचती। आम तौर पर ऐसी स्त्रियां स्वयं को अपमानित महसूस करती हैं और अपने सुन्दर शरीर को उठाकर बाहर ले जाती हैं। लेकिन भगवती ने ऐसा नहीं किया। मगर कई दफा वह यह जरूर महसूस करती थी कि उसके पति और उसके अपने बीच एक अदृश्य दीवार थी।

वह जानती थी कि प्रेम से किसी भी तरह की दीवार तोड़ी जा सकती है। उसने प्रेम की बाढ़ उँडेल दी। सहदेव के कदम डगमगाये। वह शराब पीकर अपने-आपको तैयार करने लगा, और एक दिन खुश-किस्मती से नशे में सुध-बुध खोकर उसने अपनी पत्नी को ऐसा आलिंगन किया कि उसके मन की भीत टूट गई। किन्तु इस प्रयास में सहदेव स्वयं भी टूट गया। वह बीमार पड़ गया।

जिस्मानी बीमारी अक्सर रूहानी तन्दुरुस्ती साबित होती है और सहदेव के लिए तो वह दौड़ में जीतने के बाद सुस्ताने का समय था। वह सब दायित्वों से मुक्त हो, प्रेम करने के दायित्व से भी मुक्त हो, चुपचाप अपने बिस्तरे पर पड़ा रहता और हर रोज सुबह धुले कमल-सी स्निग्ध भगवती उसकी परिचर्या में लग जाती। बीमारी का यह लम्बा अरसा सहदेव के जीवन का शायद सबसे सुखी समय था। भगवती उसके सब काम अपने ही हाथ से करती थी। मरीज के कपड़े बदलने, उसे दवा और पथ्य देने तथा उसके दाढ़ी-मूंछ के बाल शेव करने में भगवती को फिर एक बार शायद वैसा सुख मिलने लगा जोकि उसे अपनी फुल-वाड़ी के पौधों की तीमारदारी करने में आता था।

सहदेव ने देखा था कि जब से वह बीमार पड़ा वह और काला होता जा रहा था और भगवती दिन दूनी रात चौगुनी खिलती जा रही थी। वह पति की परिचर्या करती थी प्रसन्न मुद्रा के साथ, न कि चिन्ता के

भाव के साथ। वह सहदेव के कमरे में ही एक दूसरे पलंग पर सोती थी, और अपने पति की जरा सी भी आवाज सुन फौरन उठ जाती थी। अक्सर आधी रात को सहदेव की आँखें खुल जातीं और वह पानी मांगने के बहाने भगवती को जगा देता।

भगवती में आलस्य नाम मात्र को न था। आँख खुलने के बाद ही वह एक ताजा फूल की तरह खिल उठती और अपने पति को पानी पिलाकर उसी के पास लेट जाती और तब तक बातें करती रहती जब तक उसका पति सो न जाता। दिन के वक्त वह अक्सर अपने पति को कोई किताब पढ़कर सुनाती थी, लेकिन रात को वह फूल-पौधों के बारे में सहदेव को ऐसी नई-नई बातें बताती कि सहदेव ने सोच लिया कि स्वास्थ्य-लाभ करते ही वह वनस्पतिशास्त्र का अध्ययन आरम्भ करेगा। कभी-कभी भगवती अपने स्वर्गवासी पिता के युद्धकालीन संस्मरणों का उल्लेख करती और सहदेव को लगता मानो उसे एकसाथ बहुतसी कहानियों का प्लाट मिल गया हो।

हर रात वह अपने पति को सुलाकर ही सोती थी, लेकिन एक रात पति के पास लेटते ही उसकी आँख लग गई। भगवती को नींद में सोते सहदेव ने पहली बार देखा था। भगवती की सुगन्धित सांसें सहदेव के मुँह पर पड़ रही थीं और उसकी कोमल बांहें सहदेव की गर्दन में थीं। सहदेव आनन्दविभोर हो उठा। उसने ऐसा स्वर्गीय आनन्द पहले कभी न पाया था, ऐसी सुन्दर छवि पहले कभी न देखी थी।

लेकिन यह सुन्दर क्रम बहुत दिनों तक न चल सका, हालांकि सहदेव की बीमारी बहुत काफी दिनों तक चलती रही। बलदेव को पता चल गया था कि भगवती अपने बीमार पति के साथ सोती थी। एक दिन शाम को पति-पत्नी दोनों पर लज्जाजनक आचरण का आरोप लगाते हुए उसने सहदेव से कहा—

"बीमार नहीं होगे तो क्या होगे? जानते हो बीमारी में इस तरह की बदपरहेजी का क्या नतीजा होता है? अभी तो मियादी बुखार है,

फिर पीलिया होगा, फिर कालज्वर होगा···"

और भगवती की ओर देखकर वह बोला, "तुम तो पढ़ी-लिखी हो। इतना भी नहीं जानती कि छूत की बीमारी के मरीज से अलग रहना चाहिए।"

दूसरे दिन से भगवती अलग कमरे में रहने लगी और उसकी जगह एक नर्स ने ले ली, जिसकी तारीफ करते हुए बलदेव ने कहा था, "मरीज की तीमारदारी ट्रेंड नर्स ही कर सकती है।"

'मरीज !···मरीज !' सहदेव ने सोचा, 'क्या अब वह सहदेव नहीं रहा !'

नर्स आ गई। वह इस घर से परिचित थी। वह गोमती की परिचर्या में रह चुकी थी। उसने अपने पुराने परिचय की याद दिलाते हुए मुस्करा कर सहदेव का अभिवादन किया। सहदेव को ऐसा लगा मानो वह अपने किसी अप्रकट दौत्य की अग्रिम सूचना देना चाहती हो।

सहदेव दस दिन की बीमारी में बहुत कमजोर हो चुका था और अब वह ज्यादा देर किसी से बोल न पाता था और सोचने में भी उसके दिमाग पर जोर पड़ता था। वह तन्द्रा में पड़ा रहता था, और गफलत दूर होते ही भगवती को देखना चाहता। भगवती सकुचाती हुई एक बार कमरे में आई, किन्तु उसके प्रथम आगमन पर उदासीनता, दूसरे पर खिन्नता और तीसरे पर आपत्ति प्रकट कर नर्स ने भगवती का रास्ता हमेशा के लिए बन्द कर दिया। और बलदेव तो दस दिन की बीमारी में सिर्फ दो-तीन बार ही उसे देखने आया था और अब तो नर्स नियुक्त करके वह पूरी तरह निश्चिन्त हो चुका था।

सहदेव निरीह-सा, चुपचाप अपने बिस्तरे पर पड़ा रहता। न वह नर्स से ही कुछ कहता और न नर्स की ही कोई बात सुनता। जागते-जागते थक जाता तो सो जाता। नींद में भी उसे आराम न मिलता। नींद में भी उसे कमरे में नर्स की उपस्थिति और भगवती की अनुपस्थिति का भान रहता। वह निद्रा नहीं तंद्रा थी, और सबसे बड़ी परेशानी तो यह थी कि उस अर्धसुप्त अवस्था में एक खोज-सी चलती रहती मानो किसी चीज को ढूंढ़ना अनिवार्य हो। वह व्यग्रता, वह अधिकाधिक

बढ़ती हुई मानसिक हलचल सहदेव के रुग्ण शरीर को झकझोर डालती थी।

तंद्रा भंग होते ही स्वप्न-जगत् की अपनी खोज उसे व्यर्थ की मूर्खता प्रतीत होती क्योंकि वह एक ऐसी चीज खोज रहा था जो उसे मिल न सकती थी। वह स्वप्न में अपने-आपको पसीने से लथपथ, हांफता हुआ पाता और राहगीरों से पूछता, "वह कहां गई? वह कहां गई?" लोग जिधर इशारा कर देते उसी तरफ वह दौड़ पड़ता। वह उस दौड़ से बुरी तरह थक जाता, उसका दम फूलने लगता, टांगें टूटने लगतीं और तब उसकी आँखें खुल जातीं।......एक दिन स्वप्न में उसने उस स्त्री की छाया देख ली जिसे वह ढूंढ़ता रहता था। वह तो गोमती भाभी थी। इस जानकारी ने एकसाथ उसका स्वप्न भंग कर दिया।

लेकिन वह गोमती भाभी से क्या चाहता था? वह कुछ पूछना चाहता था, ऐसी बात पूछना चाहता था जो गोमती के अलावा और कोई बता न सकता था। अगर गोमती उसे मिल जाती तो वह पूछता :

'अच्छा भाभी, तुमने एक बार मुझसे कहा था न कि डाक्टर, नर्स और पति तीनों मिलकर तुम्हें मार डालने का षड्यन्त्र रच रहे हैं? सच बताओ तुमने यह कहा था या यह मेरे दिमाग की विकृति है, मेरी काम-ख्याली है?'

सहदेव को यह प्रश्न व्याकुल बना देता और वह स्वयं को धिक्कारता। क्योंकि उसने गोमती भाभी की कोई भी बात कभी ध्यान देकर न सुनी थी। उसने गोमती के साथ बहुत अन्याय किया था, उसकी उपेक्षा कर उसे जीते जी ही मार डाला था, और अब सहदेव को बीमारी के रूप में अपने अपराध का दण्ड भोगना पड़ रहा था।

बिचारी गोमती भाभी कितनी अभावग्रस्त थीं! वे प्रेम न पाने और न दे सकने की दुःखद तसवीर थीं, सृजन न कर पा संहार करने की विवृत्ति थीं, एक ओर नैराश्यपूर्ण जीवन की दुखान्त परिणति थीं। वे भूली हुई, खोई हुई-सी, अपने अन्तस् में अनेक अविकसित फलों का विष और

अतृप्त इच्छाओं के शूल लेकर जीवन से चल बसीं।

गोमती भाभी में भी आत्मा थी, हृदय था, वह सब-कुछ था जो एक मनुष्य में होता है। तो फिर सहदेव ने, जो स्वयं एक मनुष्य था, दूसरे मनुष्य की ऐसी घोर अवहेलना कैसे की? क्या यह सिद्ध नहीं करता कि स्वयं सहदेव में मनुष्यत्व का अभाव था?

गोमती के प्रति किये गये अन्यायों को याद कर और पश्चात्ताप से दिल मसोसकर और दो आंसू बहाकर सहदेव ने देर से ही सही, गोमती भाभी का समुचित श्राद्ध दिया। उसे वह शाम याद आई जब वे दोनों भाई गोमती को फूंककर घर लौटे थे। उस रात उन्होंने एक होटल में खाना खाया था, शराब पी थी और अपने-आपको हलका महसूस कर वे चैन से सोये थे। लेकिन आज जब सहदेव स्वयं रोगी पड़ा था उसने सोचा कि अगर गोमती भाभी की मृत्यु पर दो शब्दों में टिप्पणी करनी हो तो वह यह होगी:

'दो आदमियों ने, जो हमेशा अपने ही अपने बारे में सोचते थे, एक औरत को, जो सिर्फ प्यार चाहती थी, मार डाला।'

सहदेव ने गोमती के दुःखान्त को सच्ची संवेदना के साथ देखा और यह भी देखा कि कष्ट और पीड़ा में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिससे वह आने वाली घटनाओं का पूर्वाभ्यास प्राप्त कर लेता है। शायद तभी गोमती भाभी ने शिकायत की थी कि डाक्टर, नर्स और पति तीनों मिलकर उसे मार डालने का षड्यन्त्र रच रहे थे।

अब भी वही डाक्टर था, वही नर्स थी और पति के स्थान पर पिता तुल्य भाई था।

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। भाई साहब, ऐसा क्यों करने लगे?' जागरित अवस्था में सहदेव हमेशा यही सोचता, लेकिन तंद्रा में अजीब आशंकाएं और चिन्ताएं पैदा हो जातीं। अर्धजागरित और अर्धसुप्त अवस्था के बीच की पगडंडी पर खड़ा होकर वह अजीब नियमों और तर्कों

से बँध जाता। उसे लगता मानो किसी अदृश्य शक्ति ने एक ऐसा क्रम बांध दिया है जिसके अनुसार सरकस के झूलों की तरह उसे भी निर्धारित क्रम में एक के बाद एक करके बार-बार सामने आना पड़ता था। वह क्रम था : सहदेव आया गोमती गई, भगवती आई सहदेव गया, बलदेव की नई बीवी आई और भगवती गई।

सहदेव अपने-आपसे तंग आ गया था। वह अक्सर सारा दिन और सारी रात तंद्रा में ही बिता देता। जागरित अवस्था के मानसिक क्लेश की अपेक्षा गफलत की गैर-जिम्मेदारी ज्यादा सुहाती थी। इस हालत में वह अपने-आपको बिल्कुल छोड़ देता और अक्सर सपनों का तांता-सा लग जाता। वे सपने मामूली सपनों से कुछ भिन्न होते थे। वे दिशा-सी दिखाते थे, चेतावनी-सी देते थे, और कई बार बिल्कुल बे-सिर-पैर के होते हुए भी एक अजीब प्रभाव छोड़ जाते थे।

एक दिन उसने एक अजीब सपना देखा। बड़ा भाई दूल्हा बनकर पालकी में बैठा चला जा रहा था। उसने एक बंगाली वर की पोशाक पहन रखी थी। सहदेव भी बरातियों के पीछे-पीछे चल रहा था। उसे लग रहा था कि विवाह में अवश्य विघ्न पड़ेगा क्योंकि भाई साहब की पोल खुल जायगी कि वह बंगाली नहीं। वह विवाह किसी प्रकार भी उचित नहीं था। लड़की बारह बरस की थी और बलदेव बयालीस बरस का। वह विवाह नहीं, सामन्ती युग का बलात् अपहरण था, और बराती अपने ढीले-ढाले कुरतों में चाकू-छुरी छिपाये किराये के डोम थे।

इस प्रकार के स्वप्नों को देख उसका हृदय बहुत व्यथित हो उठता, लेकिन वे स्वप्न उसके मानस-पटल पर लगातार आते-जाते रहते। उसकी वह बीमारी एक लम्बी फिल्म बन गई जिसमें बहुत कम इन्टरवेल था। धीरे-धीरे उसके लिए जागरित और सुषुप्त अवस्था में कोई अन्तर न रहा। कई बार उसके दिवास्वप्न तंद्रावस्था के स्वप्नों से भी अधिक अद्भुत होते और वह निजी कल्पना से उत्पन्न भय से स्वयं सहम जाता और भयभीत हो उठता।

एक रात वह इस जागरित कल्पना में खो गया कि अगर वह मर जाय तो भगवती का क्या होगा, और उसने आंसू बहाये। रोते-रोते थककर वह सो गया। कई दिनों बाद उसे गहरी नींद आई थी। जब आंख खुली तो दिन काफी चढ़ आया था। और वह अपने-आपको कुछ हलका महसूस कर रहा था। उस रोज उसे नर्स भी एक मामूली औरत दिखाई दे रही थी। भगवती का ख्याल आते ही गत रात की अपनी भयंकर कल्पना याद आई और भगवती की सुरक्षा की चिन्ता और अपनी असमर्थता को देखकर एक बार फिर उसका मन रो उठा।

उसी समय भगवती कमरे में चली आई। उसका मुख मानो रातों-रात फूल की तरह खिल उठा हो। और उस दिन तो भगवती ने होठों पर लिप्स्टिक और गालों पर रूज़ लगा रखा था जोकि सहदेव ने पहले कभी उसके मुख पर न देखा था। उसने एक गहरी नारंगी साड़ी पहन रखी थी। वह उस पके फल की तरह लग रही थी जो उंगली के जरा से दबाव से फूट पड़ने को आतुर हो।

कमरे में दाखिल होते समय वह प्रसन्न थी किन्तु बिस्तरे पर असहाय पड़े हुए सहदेव को देख उसके मुख पर दया अंकित हो आई और जो सहदेव एक क्षण पूर्व उसके लिए स्वयं दयार्द्र था, अब अपने को दया का पात्र पाकर एक बार फिर रो उठा।

"तुम रो रहे हो।" भगवती ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"नहीं तो, ऐसे ही आँखों में पानी आ गया कमजोरी से," सहदेव स्वयं को सम्हालते हुए बोला।

पीछे से बलदेव आ गया। वह नीली सर्ज के सूट में कहीं बाहर जाने को तैयार था। उसने सहदेव को संबोधित करते हुए कहा, "अब तो तुम्हारे बुखार की मियाद भी पूरी हो चली। डाक्टर कहता है कि दो-तीन दिन के बाद तुम्हारा बुखार उतर जायगा। यही वक्त खास एहतियात का है। हिलना-डुलना बिल्कुल मना है। अच्छा, आओ

भगवती, चलना हो तो चलो।"

"आप चलिए, मैं अभी आती हूं।"

भगवती सहदेव के बिस्तरे पर बैठ गई और उसके हाथ को अपने हाथों में लेकर बोली, "अब तुम कब अच्छे हो आगे? जल्दी अच्छेहोओ न।"

सहदेव का मन फिर रो उठा और आँखें फिर भर आई।

"क्यों क्या बात है ?" भगवती ने अपनी साड़ी के छोर से सहदेव के आँसू पोंछते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं," सहदेव ने पुनः संयम प्राप्त करते हुए कहा।

"तुम्हें मेरी कसम। तुम्हें बताना होगा कि तुम रो क्यों रहे हो," वह बोली और पति की छाती पर सिर रखकर लेट गई।

भगवती का सिर भारी था और अगर वह ज्यादा देर सहदेव की छाती पर अपना सिर रखे रहती तो निश्चय ही सहदेव का दम घुटने लगता। आखिर नर्स ने संकेतात्मक रूप में गला साफ किया और भगवती उठ बैठी। लेकिन उसने नर्स की ओर सख्ती के साथ देखते हुए उसे कुछ देर के लिए बाहर चले जाने का हुक्म दिया और फिर अपने पति की छाती पर सिर रखकर बोली, "बताओ न, तुम क्यों रोये ?"

सहदेव ने इतनी देर में उत्तर सोच लिया था क्योंकि वह जानता था कि संतोषजनक उत्तर पाये बिना भगवती न मानेगी। वह बोला, "मैं बीमारी से तंग आ गया हूं। इतने दिनों से पड़ा हूं, उठ नहीं सकता, बैठ नहीं सकता। यह सोचकर कभी-कभी रोना आ जाता है।"

"यह लो! जब बीमारी सारी पार कर ली तब आपको रोना आया!" कहकर भगवती हँस पड़ी।

पहले उत्तर में सहदेव भी मुस्करा दिया। भगवती ने सहदेव का हाथ चूम लिया और सहदेव ने भगवती का।

"पहले तो तुम कभी लिप्स्टिक नहीं लगाती थीं। आज कहाँ जा रही हो सजधज कर ?" सहदेव ने पूछा।

भगवती ने सहदेव के खातिर ही अपना शृङ्गार किया था। उसका

ख्याल था कि पत्नी का परिवर्तित रूप देखकर पति प्रसन्न होगा।

"लो, तुम्हें अच्छी नहीं लगती लिप्स्टिक तो मैं मिटाये देती हूं।" भगवती ने अपने रूमाल से अपने होठों की लाली पोंछते हुए कहा।

"नहीं नहीं, मेरा यह मतलब न था," सहदेव ने आपत्ति की।

बाहर से नर्स ने आवाज दी: "बड़े बाबू बुला रहे हैं, बहू जी। बार-बार मोटर का हार्न बजा रहे हैं।"

'अभी आती हूं," भगवती ने कहा और सहदेव का माथा चूमकर वह उठ बैठी।

"लेकिन जा कहां रही हो?" सहदेव ने पूछा।

"भाई जी के साथ कर्टेन्स खरीदने।"

"शायद तभी कर्टेन जैसी साड़ी पहनी है। मेट्रो सिनेमा में इसी रंग के परदे हैं।"

"तो आपको मेरी साड़ी भी पसन्द नहीं।"

"नहीं, सो बात नहीं। साड़ी बहुत अच्छी है। अच्छा, अब जाओ, भाई साहब तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं। तुम उन्हें इतनी देर इन्तजार करा लेने की हिम्मत कैसे कर लेती हो।"

उत्तर में भगवती मुस्करा दी। सहदेव ने वैसी मुस्कान भी भगवती के चेहरे पर पहली बार ही देखी थी।

सहदेव ने अपनी बीमारी से दो चीजें पाईं। एक तो उसका शरीर तमाम विकारों से मुक्त हो गया और दूसरे वह अपने जीवन में परिवर्तन लाने की आवश्यकता महसूस करने लगा। किन्तु परिवर्तन किस प्रकार लाया जाय, यह जानने के लिए उसने अपने जन्म से लेकर अब तक के अपने जीवन का पुनरवलोकन आवश्यक समझा और हमेशा की अपनी आदत के अनुसार अपनी डायरी में डूब गया।

भगवती नये घर का कार्यभार सम्हालने में व्यस्त हो गई। उसने एक आलमारी खाली करके एक छोटा-सा मन्दिर स्थापित कर लिया और सुबह जब सहदेव मुँह खोल खुर्राटे भर रहा होता, वह नहा-धोकर गांधी जी के प्रिय भजन 'वैष्णवजन तो तैने कहिए जो जानै पीर पराई रे' गुनगुनाती रहती थी।

भगवती के आने से पहले बलदेव और सहदेव अपने-अपने कमरे में ही चाय पीते थे। बलदेव ने शुरू में यह तरीका इसलिए अपनाया था कि उसे सुबह गोमती का मुँह न देखना पड़े। बाद में, यह एक आदत-सी बन गई थी। सहदेव को भी यह तरीका पसन्द था। उसे अपने कमरे में अपनी किताबों और कापियों के बीच अकेले बैठकर चाय पीना भाता था। लेकिन भगवती के आने के बाद से बलदेव नहा-धो, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर डाइनिंग टेबल पर नाश्ता करता था। भगवती भी नहाई-धोई, साफ-सुन्दर कपड़ों में साथ बैठ चाय पीती थे। सहदेव को भी बीमारी से उठने के बाद साथ बैठकर चाय पीने को बुलाया गया। उस दिन अतिथि

मोरनिया उपस्थित था। उसके बालों में लगे ब्रिलियन्टाइन की खुशबू हवा में उड़ रही थी।

सहदेव रात के मुसे-मुसाये कपड़ों में आ बैठा। उसके सिर के बाल अस्त-व्यस्त थे। वह दो-तीन दिन से बढ़ी अपनी दाढ़ी खुजला रहा था। जिस समय वह कमरे में दाखिल हुआ तीनों लोग किसी मजाक पर हँस रहे थे। उसकी सूरत देखते ही वे एकसाथ गंभीर हो गये।

"आइए हजरत," मोरनिया बोला, "अब आपकी सेहत कैसी है ?"

"अच्छा हूं", मुस्कराकर सहदेव ने उत्तर दिया।

"लेकिन यह दाढ़ी और सिर के बाल इतने क्यों बढ़े हुए हैं ? क्या वैराग्य ले लिया ?" बलदेव ने भगवती की ओर देखते हुए सहदेव से पूछा।

भगवती नीची नजर कर मुस्करा दी।

"सब लेखकों का ऐसा ही हुलिया होता है," मोरनिया ने भी भगवती की ओर देखते हुए टिप्पणी की।

भगवती फिर नीची नजर कर मुस्करा दी।

सहदेव ने स्वयं को लेखक के रूप में स्वीकृत होते देखकर अपने गन्दे कपड़ों को गन्दा न समझा। आत्मविश्वास के साथ वह मेज पर आ बैठा।

"कोई नई चीज लिखी है ?" मोरनिया ने पूछा।

"हाँ। कल एक कहानी लिखी है।"

"तो फिर सुनाओ," मोरनिया बोला।

"अभी नहीं, शाम को।" बलदेव ने कहा। फिर वे सहदेव का अस्तित्व भूल, अपनी बातों में खो गए।

"तो मैं कह रहा था," बलदेव बोला, "कि मेहता साहब, जिनके साथ मेरा चौबीसों घंटों का उठना-बैठना था, मेरे मुँह से यह सुनकर बहुत नाखुश हुए कि उनकी बीवी बदसूरत थी। दूसरे दिन से ही उन्होंने मुझसे मिलना-जुलना छोड़ दिया। कई लोग अपने बारे में दूसरों

के मुँह से सचाई नहीं सुनना चाहते। मैंने एक उपन्यास पढ़ा था जिसकी नायिका दुनिया भर की खुराफात करने के बाद भी यह मानने को तैयार न थी कि वह बदचलन है।"

"कई लोग ऐसे भी तो होते हैं," मोरनिया ने सहदेव की ओर देखते हुए कहा, "जो यह सुनकर बुरा मान लेते हैं कि उनकी पत्नी सुन्दर है। अगर तुम्हारी पत्नी सुन्दर है और उसकी प्रशंसा की जाय तो क्या तुम भी बुरा मानोगे ?"

सहदेव को यह प्रश्न अच्छा न लगा। मोरनिया और बलदेव की वाचालता उसे पसन्द न आई। बलदेव और मोरनिया के साथ भगवती का बैठना ही, दरअसल उसे पसन्द न आया। वह चाहता था कि इस बारे में भगवती से एकान्त में बातें करे लेकिन एक तो उसने भगवती को हमेशा अपने काम में मगन पाया और दूसरे जब भगवती को ही बलदेव और मोरनिया के साथ बैठने में आपत्ति न थी तब वह किस आधार पर आपत्ति करता ? मोरनिया के प्रश्न के उत्तर में एक फीकी-सी हँसी हँसकर वह रह गया।

लेकिन मोरनिया के दुस्साहस की सीमा न थी। वह भगवती से पूछ बैठा, "अच्छा देवी जी, आप बताइए। आपके पतिदेव तो शरमाते हैं। क्या किसी स्त्री के सौन्दर्य की प्रशंसा करना गलत है ?"

"मैं क्या बताऊं ? यह तो खुद आपके सोचने की बात है," भगवती ने धीरे से उत्तर दिया।

मोरनिया नाटा और बदसूरत होते हुए भी सहदेव से हर काम में आगे रहता था। बलदेव के लिए कई बार यह असहनीय हो उठता। भगवती के सामने मोरनिया बातों का तांता लगा देता मानो कोई होड़ लगी हो। बलदेव जानता था कि मोरनिया अपनी मां को छोड़कर हर औरत को एक ही निगाह से देखता था। लेकिन अपने बारे में यही बात बलदेव भी अंग्रेजी उपन्यास की नायिका की तरह मानने को तैयार न था। बलदेव ने कहा, "अच्छा, अब उठा जाय," और वे दोनों उठकर

चल दिये। सहदेव भी उठकर चलने लगा। उसे शाम को अपनी नई कहानी जो सुनानी थी। लेकिन भगवती ने उसका हाथ पकड़ लिया मानो वह पूछना चाहती थी : 'किस बुद्धि से जीऊं ?' सहदेव का पसीने से गीला निष्प्राण हाथ एक क्षण भगवती के हाथ में रहा लेकिन सहदेव की आँखों में पलायन की इच्छा देखकर भगवती ने उसका हाथ तत्काल छोड़ दिया।

सहदेव ने अपने बाल्यकाल के पुनरवलोकन से एक सुन्दर-सी कहानी निकाली थी। वह उस शाम वही कहानी बलदेव और मोरनिया को सुनाने वाला था। मोरनिया के साथ अन्य एक-दो साहित्य-प्रेमी बन्धु भी आने वाले थे। लेकिन यह सोचकर सहदेव एक अजीब खतरा महसूस करता कि भगवती भी उसकी कहानी सुनने वालों में होगी। यह पहला मौका था जब वह भगवती के सामने अपनी कृति पढ़कर सुनाने वाला था। न जाने क्यों यह ख्याल उसे बार-बार बेचैन कर देता था फिर भी यह सोचकर उसने अपने मन को खुश कर लिया कि वे लोग आयेंगे, गपशप होगी, हँसी-मजाक होगा, और जब वे उसकी कहानी सुनेंगे तो महसूस करेंगे कि अगर उनके पास धन-दौलत है तो उसके पास कला है।

शाम हुई। पहले मोरनिया आया, बलदेव कुछ देर बाद आने वाला था। आते ही मोरनिया एक आराम-कुरसी पर लेट गया। वह कुछ चिंतित और गम्भीर प्रतीत होता था। अब सहदेव न सिर्फ मोरनिया की इज्जत ही करने लगा था, बल्कि उसके साथ उठने-बैठने से फख्र भी महसूस करता था। मोरनिया को चिन्तित देखकर सहदेव स्वभावतः दुखी हुआ और उसने मोरनिया की चिन्ता का कारण पूछते हुए कहा—

"ऐसी कमाई में क्या रखा है कि दिन-रात सिर पर फिक्र सवार रहे।"

उत्तर में मोरनिया ने कहा, "हमारे लिए तो फिक्र ही जिन्दगी है। हां, हम तुम्हारी जैसी जिन्दगी की कल्पना नहीं कर सकते कि कोई काम-

धाम नहीं, कोई चिन्ता-फिक्र नहीं, और बगल में एक नई बीवी।"

स्पष्ट यह एक बड़ा तीखा व्यंग्य था, जिसकी उस समय सहदेव को अपेक्षा न थी। वह चुप हो गया। मगर मोरनिया बोलता ही रहा, "अरे, हमारी नहीं अपनी फिक्र करो। इतने बड़े हुए। शादी हुई। देखना, अभी साल भर में बच्चा हो जायगा। और एक पैसा नहीं कमाते। क्या यह शर्म की बात नहीं? फिक्र की बात नहीं? जब मैं चौदह बरस का था तभी से रुपया कमाने लगा था।"

उस दिन फिर सहदेव ने न तो अपनी कहानी सुनाई और न वह बलदेव व मोरनिया की बातचीत में ही शरीक हुआ। उसे अपनी लज्जा इतनी बड़ी लगी कि वह घर की चहारदीवारी में छिप न सकती थी लेकिन कलकत्ते की चौड़ी सड़कों पर लगातार घूमते रहने के बाद भी सहदेव अपनी लज्जा खो न पाया। वह साधारण लज्जा न थी, अर्थोपार्जन की असमर्थता से पैदा हुआ वह पुराना घाव था जो मोरनिया के वाक्‌प्रहार से हरा हो उठा था। तो बड़े भाई का यह आश्वासन कि उसे अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिए जीवन भर चिन्ता न करनी होगी, क्या झूठा था? अब उसे बड़े भाई का रवैया भी कुछ बदला हुआ-सा नजर आने लगा था। अब उसकी बातों में व्यंग्य होता था, प्यार भरी फटकार न होती थी, जैसे मानो वह सहदेव से कोई चीज मांगता था पर प्रत्यक्षतः उसे प्रकट न करना चाहता हो। यह बात सहदेव को और ज्यादा परेशान कर देती थी।

आखिर बड़ा भाई उससे क्या चाहता था? वे दिन कितने अच्छे थे जब बड़ा भाई उससे कुछ न चाहता था। वह दिन-भर लेटे-लेटे उपन्यास पढ़ता रहता। उन्हीं दिनों उसने विश्व-साहित्य की उत्कृष्ट कृतियां पढ़ी थीं, फिर भी न जाने क्यों उसे लगता था कि आराम की वह जिन्दगी ज्यादा दिन चल न सकेगी। और जितने दिन भी चलेगी उसकी भारी कीमत अदा करनी पड़ेगी। शायद बड़े भाई के मन की थाह लेने के लिए एक दिन सहदेव ने कहा था, "भाई साहब, आजकल तो आपको

बात करने तक की फुरसत नहीं रहती, और मैं सारे दिन बेकार पड़ा रहता हूं। इस तरह मेरा मन भी नहीं लगता।"

उत्तर में बलदेव ने मोहब्बत भरी शरारत के साथ सहदेव की गरदन में हाथ डालकर उसे दबाना शुरू किया। सहदेव ने अपने शरीर में एक अजीब गुदगुदी महसूस की। वह खिल-खिलाकर हँसने लगा, लेकिन फिर भी उसने अपनी गरदन आसानी से दबने न दी। बलदेव और जोर लगाने लगा और दोनों भाई गुत्थमगुत्था हो जमीन पर आ पड़े। अन्त में दोनों हँसकर उठ पड़े। कितने अच्छे थे वे दिन! और अब बलदेव कुछ चाहता था, और यह बताता भी न था कि क्या चाहता था? कैसी मुश्किल थी!

यह सारी मुश्किल शादी के बाद ही शुरू हुई थी। क्यों तो उसकी शादी की और क्यों अब उससे कुछ मांग की जा रही थी? शायद खूबसूरत स्त्री का पति बनना एक जिम्मेदारी है। सहदेव यह बात अपनी डायरी में पहले ही लिख चुका था, लेकिन उसका असल मतलब अब समझ रहा था। यह तो नई स्थिति पैदा हो गई थी, जिसमें एक ओर बड़ा भाई रूठा-सा रहता, दूसरी ओर बीवी अपने-आपको उड़ेलने को हमेशा तैयार रहती थी, और वह स्वयं अपने अस्तित्व को प्रमाणित करके भी खिन्न बना रहता था; किस वजह से?

भगवती का इसमें कोई दोष नहीं, लेकिन फिर भी उसकी खूबसूरती दोषी थी। वह इतनी खूबसूरत थी कि आर्थिक जगत् की शक्तियों पर अधिकार पाने की स्वयं में सामर्थ्य देखने वाले बलदेव और मोरनिया जैसे लोगों की आंखों में भी उसे देखकर वही चमक आ जाती थी जोकि नन्हें बच्चों की आँखों में रंगीन गुब्बारों को देखकर आ जाती है। वह इतनी खूबसूरत थी कि उसके सामने सहदेव उस छोटी रेखा की तरह हो गया था जिसके पास एक बड़ी रेखा खिच गई हो। सच तो यह है कि वह सहदेव जैसे छोटे पात्र में समा न सकती थी।

इसी तरह सोचते-सोचते सहदेव अपने घर से बहुत दूर निकल

आया। खुली, चौड़ी सड़कों को छोड़ पुरानी सँकरी सड़कों पर वह तेजी से चलने लगा, मानो कोई उसका पीछा कर रहा हो। कई बार वह बिना बात ही रुक जाता और पीछे मुड़कर देख लेता। आखिर, वह थककर एक रेस्तरां में जा बैठा जहां एक ग्रामोफोन रिकार्ड बज रहा था। उस पुरानी धुन को सुनकर उसे अपने यौवन के दिन याद आए जब वह कालेज में पढ़ता था। तब वह विद्यार्थी था, उसके जीवन का एक अर्थ था, एक उद्देश्य था। और अब ? और अब ?

अन्त में उसे मोरनिया का वही वाक्य याद आया जिसने उस शाम उसे विचलित किया था। तो बड़ा भाई यही चाहता था न कि वह कोई काम करे, कुछ रुपया कमाये। बड़ा भाई भी इतना बड़ा नहीं कि उसे अर्थोपार्जन से मुक्ति दिला सके। बहरहाल, जिन्दगी में रहकर रुपया कमाने की शर्त तो पूरी करनी ही होगी। उसी समय सहदेव ने निश्चय कर लिया कि वह कहानी, उपन्यास जैसी फालतू चीजों में अपना समय न गँवाकर धन पैदा करने में अपनी सारी ताकत लगा देगा। वैसे भी धनोपार्जन पौरुष का सबसे बड़ा प्रमाण है।

दूसरे दिन ही सहदेव ने अपने बड़े भाई से अर्ज की कि वह कोई काम करना चाहता है। बलदेव ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "तुम्हारे मुँह से यह बात सुनने का मैं कब से इन्तजार कर रहा हूं। खैर, खुशी है कि तुममें बुद्धि आई।"

अगले दिन से सहदेव अपने बड़े भाई के दफ्तर जाने लगा। घर से दफ्तर के लिए रवाना होने के साथ ही पता नहीं क्यों उसके पेट में दर्द होने लगता। शायद खाना खाने के तुरन्त बाद चल पड़ने से ऐसा होता हो। दफ्तर में भी दर्द काफी देर तक बना रहता और सहदेव अपना पेट पकड़ अपनी जगह आ बैठता और भगवान् से मनाता कि कम से कम कुछ देर तक बड़ा भाई उससे किसी काम के लिए न कहे।

वह बलदेव का अपना दफ्तर था। हालांकि शुरू में वह किसी दूसरे आदमी के पास था मगर बलदेव में यह गुण था कि जिस चीज पर वह उँगली धरता वही उसकी हो जाती, और दफ्तर का वह छोटा-सा कमरा जिसमें चार मेजें आमने-सामने सटाकर रखी गई थीं, अब उसका अपना हो चुका था। एक मेज बलदेव की थी और साथ दूसरी मेज सहदेव को बैठने को मिली। बलदेव के सामने उसका असिस्टेंट बैठता था जिसे अपने मालिक की गैरहाजिरी में कार्यालय का पूर्ण अधिकार था। पास की दूसरी मेज स्टेनोग्राफर की थी, जो हमेशा इस इतमीनान के साथ बैठता मानो दुनिया में उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

दफ्तर का वह कमरा इतना तंग था कि अगर बलदेव अपने छोटे भाई के कान में कुछ कहना चाहता तो दूसरे लोगों को वह बात सुनने की ख्वाहिश न होते हुए भी सुनाई दे जाती थी। किन्तु बलदेव तो गुप-चुप बात करने का आदी ही नहीं था। उसका तो यह ख्याल था कि मर्दों को जोर से और औरतों को धीरे बोलना शोभा देता है, और कई दफा वह सहदेव को उसकी धीमी आवाज पर, जिसे सहदेव अपनी शिष्टता

का प्रतीक समझता था, डांट चुका था। बलदेव खास तौर पर दफ्तर में हमेशा जोर से कड़ककर बोलता मानो लिहाज नाम की कोई चीज ही नहीं। किन्तु यदि कोई व्यापारी उससे कुछ गुप्त बात कहना चाहता तो दफ्तर के दोनों कर्मचारियों को कमरे से बाहर चला जाना पड़ता था। सहदेव के लिए ऐसा करना जरूरी न था।

लेकिन कभी-कभी अन्य दोनों कर्मचारियों के सामने ही वह सहदेव से इस तरह पेश आता मानो सहदेव उसका भाई नहीं, एक तीसरा कर्मचारी हो। घर में सहदेव अपने बड़े भाई के जूते भी साफ कर सकता था, मगर दफ्तर में ऐसा काम करना, जोकि एक चपरासी को शोभा देता था, जैसे कि कोई फाइल उठाकर दे देना या अलमारी में से कोई रजिस्टर निकाल देना उसे बहुत वाहियात लगता था। धीरे-धीरे सहदेव महसूस करने लगा कि उसका दर्जा अन्य दोनों कर्मचारियों से नीचा बना दिया गया है, क्योंकि बड़ा भाई उन दोनों के सामने ही सहदेव को छोटी-मोटी गलतियों पर उसे बुरी तरह डाँट देता था और अक्सर उन दोनों कर्मचारियों को ही नहीं, बल्कि दफ्तर के चपरासी तक को हँसने का मौका मिल जाता था।

एक दिन बलदेव अपनी दराज से दस-बारह कागजों को निकाल, सहदेव को थमाते हुए बोला, "यह लो, तारीखवार सब चिट्ठियों को फाइल करके मुझे दो, जल्दी करो जल्दी।" दफ्तर में वह कुछ इस तरीके से बात करता था कि उसकी बात पूरी तरह समझने में कुछ देर लगती थी। सहदेव उस समय भी यह समझ न पाया था कि दरअसल उसका भाई उससे क्या चाहता था। क्या वे चिट्ठियां एक नई फाइल में डालनी थीं या उस विषय की कोई पुरानी फाइल थी ? सहदेव जानता था कि अगर वही बात वह अपने बड़े भाई से इस वक्त पूछ बैठा तो वह निश्चय ही झुँझला उठेगा। यही सोच सहदेव उन चिट्ठियों को हाथ में लिये कुछ देर पशोपेश में बैठा रहा और उसे इस तरह बैठा देख बलदेव आखिर झुँझला ही उठा।

"मुँह क्या ताक रहे हो ? देखते नहीं मुझे देर हो रही है ?" वह बोला ।

"क्या एक नई फाइल में इन्हें डाल दूं ?" आखिर सहदेव पूछ ही बैठा ।

"और क्या । जल्दी करो जल्दी ।"

सहदेव ने पहले कभी कोई चिट्ठी फाइल न की थी और न वह यही जानता था कि पंचिंग मशीन से हर चिट्ठी पर समानान्तर दूरी के सुराख कर उसे फाइल में लगाया जाता है। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि बड़ा भाई सिर पर खड़ा था और उसकी मौजूदगी ने सहदेव को गड़बड़ा दिया था। इसी तरह एक बार वह अपने नाना के घर गया हुआ था जहाँ कि एक लालटेन जलाने को उससे कहा गया था। सहदेव लालटेन जला न पाया और उसके मामा ने उसका मजाक उड़ाते हुए कहा था, "बी० ए० पास हो और लालटेन जलाना तक नहीं जानते ।"

सहदेव ऐसी कोई बात बड़े भाई से नहीं सुनना चाहता था और वह उन चिट्ठियों को जल्दी-जल्दी फाइल में अड़ाने की कोशिश करने लगा। बलदेव ने फौरन ही वे कागजात सहदेव के हाथ से छीनकर चपरासी के हाथ में दे दिये। चपरासी ने सब चिट्ठियों को बाकायदा फाइल करके रख दिया। बलदेव उन्हें उठाकर चल दिया और चपरासी सहित तीनों कर्मचारी सहदेव की मूर्खता पर हँसने लगे ।

इस प्रकार की अप्रिय घटनाओं के बाद शाम को घर लौटना और फिर उसी भाई के साथ जो दफ्तर में अफसर बन डांट पिलाता हो, एक मेज पर बैठ खाना खाना और वह भी अपनी पत्नी की उपस्थिति में—यह सब सहदेव के लिए असहनीय हो उठता। अब वह अक्सर शाम के वक्त सड़कों पर निरुद्देश्य घूमता रहता और देर से घर लौटता। अगर तब तक बीवी सो चुकी होती तो स्थिति अनुकूल होती—सहदेव देर से लौटकर आने की जवाबदेही से बच जाता।

लेकिन अक्सर भगवती जागते हुए भी सोने का बहाना बना आँखें

मूँदे पड़ी रहती। वह जानती थी कि उसका पति उससे बहुतसी बातें छिपाता था, और उसे दुःख खास तौर पर इस बात का था कि वह यह न जान पाती कि वह क्या छिपाता था। विवाह से पूर्व उसने यह कभी न सोचा था कि उसके पति का कैसा रूप-रंग होगा, वह क्या काम करता होगा, कितना पढ़ा-लिखा होगा। एक पति होगा, बस, यही उसके लिए काफी था। और उसे इतना मालूम न था कि वह अपने पति को खूब प्यार करेगी और पति भी उसे दिल से प्यार करेगा। वे हमेशा साथ-साथ रहेंगे, साथ-साथ खायेंगे, पियेंगे और साथ-साथ जियेंगे, मरेंगे। वे दोनों एक-दूसरे के दिल की धड़कन को, एक-दूसरे की साँसों के उतार-चढ़ाव को इतनी अच्छी तरह जान लेंगे कि उन्हें यह न मालूम पड़ेगा कि उन दोनों में से कब कौन साँस लेता है। वे दोनों आपस में इतने घुल-मिल जायेंगे कि एक-दूसरे के गुप्ततम भावों को जानना उनके लिए कठिन न होगा। और अब मुश्किल यही थी कि भगवती जान न पा रही थी कि वह कौन-सी चीज थी जो उसके पति के दिल और दिमाग को परेशान बनाए हुए थी।

भगवती ने अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखी थी। वह अपने पति को पूरी तरह पाने के लिए अपना सब कुछ देने को तैयार थी। आरम्भ में उसने अपने शरीर की कीमती पिटारी उसके सामने खोलकर रख दी, लेकिन पति ने कभी किसी रत्न को उठाकर चूमा नहीं, सराहा नहीं। उन अछूते बहुमूल्य रत्नों पर महज लापरवाही से अपनी उंगली फेर सहदेव अलग हट गया।

स्त्री का शरीर एक माने में उसका तुरुप का पत्ता है। लेकिन जब भगवती ने तुरुप का पत्ता चला और वह कारगर न हुआ तो उसने एक अच्छे खिलाड़ी की तरह अपने चेहरे पर शिकन न आने दी। उसने अपने पति के व्यवहार से आहत होकर भी अपने मुख पर कभी किसी प्रकार का क्षोभ या रोष प्रकट न होने दिया। वह सुबह से शाम तक खुशी-खुशी घर के काम में लगी रहती। उसने अपने पति के घर को एक

बार फिर नये सिरे से सजाया था, और अपनी सौंदर्यानुभूति की प्रशंसा अपने पति के मुँह से न सही, पति के बड़े भाई के मुँह से ही सुन प्रोत्साहन पाया था। लेकिन जब उसने सहदेव के अस्तव्यस्त कमरे को व्यवस्थित रूप देने की कोशिश करनी चाही तो सहदेव टालमटोल करने लगा। वह न चाहता था कि भगवती उसके कागज-पत्रों को उठाये, उसकी लिखी हुई चीजों को पढ़े क्योंकि उसे खतरा था कि इस तरह वह सहदेव की सब कमजोरियों को जान लेगी।

भगवती को क्या मालूम था कि उसका पति अपने कमरे में उसका हस्तक्षेप किस कारण पसन्द न करता था। वह तो यही समझी कि जिस प्रकार उसके शरीर को पति ने पूर्णतः स्वीकार न किया था उसी प्रकार अपने कमरे में उसकी उपस्थिति भी पति को रुचिकर न थी। लेकिन फिर भी भगवती ने अपने हाव-भाव से अपनी असन्तुष्टि कभी प्रदर्शित न होने दी।

उधर सहदेव दफ्तर में अधिकाधिक गलतियां करने लगा और प्रायः हर काम ही उससे बिगड़ने लगा। एक दिन भाई की गैर-मौजूदगी में उसे एक टेलीफोन सुनना पड़ा। वैसे यह जिम्मेदारी आफिस असिस्टेंट की थी। वही हमेशा टेलीफोन पर जवाब देता था और बहुतसे काम अपनी निजी जिम्मेदारी पर कर डालता था। यह हक स्टेनो को हासिल न था और सहदेव चाहता भी न था कि उसे हासिल हो। जिस समय टेलीफोन की घंटी बजी आफ़िस असिस्टेंट कमरे में न था और स्टेनो द्वारा रिसीवर उठाये जाने से पहले ही सहदेव ने अपना हाथ बढ़ा दिया।

वह कानपुर के एक व्यापारी का ट्रंक काल था। वह चाहता था कि कुछ वैल्ब, जिनकी कई किस्मों के नाम व नम्बर उसने सहदेव को बताए थे, उसी दिन शाम की सवारी गाड़ी से रवाना कर दिये जाएं। उसने अपनी बात दो बार कही और सहदेव ने सारी बात समझ कागज पर नोट करने के लिए पैड की तलाश में जैसे ही बलदेव की मेज की

दराज खोली कि उसकी नजर नग्न स्त्रियों के एक अलबम पर पड़ी।

सहदेव मांसपिंडों की उन विभिन्न आकृतियों को एक के बाद एक करके देखता गया और जब अन्तिम चित्र पर पहुँचा तो अचानक उसे महसूस हुआ कि इतने सारे मांस को पाने की लालसा ने ही, हो न हो, बड़े भाई को अपना निजी विवाह करने से, एक-नारी-व्रत पालन करने से विमुख बना दिया था। सहदेव के लिए यह नई खोज न थी। अपने भाई के स्वभाव से, स्त्रियों के प्रति उसकी दुर्बलता से, वह परिचित था। किंतु उस समय यह तथ्य सहदेव के सामने इतने स्पष्ट रूप से मूर्त हो उठा कि उसके पेट में हलचल मच गई। यद्यपि नैतिक दृष्टि से बड़े भाई की यह प्रवृत्ति क्षम्य न थी परन्तु नैतिकता की कौन परवाह करता था! अनैतिक होते हुए भी वह प्रवृत्ति पुंसकत्व की द्योतक थी, और साथ ही साथ पाशविकता की भी, और इसी पाशविकता का सहदेव में अभाव था।

अचानक सहदेव को ख्याल आया कि उसने कानपुर के व्यापारी का संदेश नोट करने के लिए दराज खोली थी। लेकिन वह तो बिल्कुल भूल चुका था कि उन वैल्वों के नाम और नम्बर क्या थे, जो उस व्यापारी ने मँगवाये थे। अजीब बात थी कि वे नम्बर, जिन्हें कानपुर के व्यापारी ने टेलीफोन पर दोहराया था, सहदेव के दिमाग से बिल्कुल उतर गए। वह घबरा उठा।...बड़े भाई को वह क्या जवाब देगा? शाम की सवारी गाड़ी से माल भिजवाना था। क्यों न वह अपनी तरफ से कानपुर टेलीफोन करके पता लगा ले कि व्यापारी को कौनसे वैल्व चाहिए थे? लेकिन व्यापारी क्या सोचेगा कि उसके दोहराने पर भी वह आर्डर समझ न पाया। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आया। डर के मारे सहदेव पसीना-पसीना हो गया।

बलदेव उन दिनों शाम को दफ्तर से सीधा घर पर आता और कभी-कभी तो घर के लिए दफ्तर से भी जल्दी ही चल पड़ता था। उन दिनों वह भगवती के साथ घर को नये सिरे से सजाने में लगा था। एक बार पहले भी, अपनी पत्नी गोमती की मृत्यु के बाद उसने घर को सजाया

था। सजाया नहीं, सजवाया था क्योंकि तब उसका ख्याल था कि हर काम के लिए विशेषज्ञ होता है और उसने एक पेशेवर सज्जाकार को यह भार सौंप दिया था। लेकिन अब वही बलदेव बड़ी-बड़ी चीजें उठाने-धरने और उन्हें करीने से लगवाने में, खिड़कियों के परदों और कुरसियों की गद्दियों के कपड़ों के रंगों में, कलाचित्रों की विभिन्न शैलियों जैसी तथाकथित व्यर्थ की चीजों में विशेष रुचि लेने लगा था।

सहदेव को अपने बड़े भाई का यह रवैया पसन्द न था। जिसे वह कभी खुदा समझता था, जिससे वह बड़े-बड़े कामों की आशा रखता था, जिसने कभी संसार के परस्पर सम्बन्धों की जटिल पहेली को न केवल बूझने बल्कि अपनी इच्छानुसार उन सम्बन्धों को मोड़ने का दावा किया था, अब एक नई लड़की के सामने सिर खुजाता हुआ और यह सोचता हुआ अच्छा न लगता था कि पीले रंग के साथ हरे या नीले रंग का मेल है।

बहरहाल, उस समय घर की ओर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ सहदेव यह सब न सोच रहा था। उसके सामने एक समस्या थी जिसका समाधान तत्काल ही, सन्ध्या से पूर्व होना चाहिए था। सहदेव ने सोच लिया था कि वह सारी बात सचाई के साथ अपने भाई को बता देगा और फिर जो कुछ भी होगा देखा जायगा।

जिस समय वह घर पहुंचा, बलदेव और भगवती कहीं बाहर जा रहे थे। दरवाजे के बाहर, सड़क पर सहदेव की उनसे मुलाकात हुई।

"भाई साहब, आपसे कुछ जरूरी बात कहना चाहता हूं," सहदेव ने अपने भाई को भगवती से अलग ले जाने की गरज से कहा।

बलदेव घर के सामने खड़ी कार तक चला आया। भगवती के लिए आगे की सीट का दरवाजा खोल, खुद ड्राइवर की सीट पर जा बैठा और फिर सहदेव की ओर देखकर बोला, "कहो।"

सहदेव को बाध्य होकर अपनी गलती अपनी बीवी के सामने मंजूर करनी पड़ी।

"तुममें कब अक्ल आयेगी ?" बलदेव ने अपनी व्यथा का भाव मुख पर लाते हुए कहा, "अगर एसट नहीं बन सकते तो कम से कम लायबिलिटी तो मत बनो।"

सहदेव खड़े-खड़े स्वयं को पिछलता-सा महसूस करने लगा। बलदेव ने स्टार्ट पर पैर रखते हुए कहा, "अच्छा अब कल देखेंगे। जो हो गया सो हो गया।"

लेकिन गाड़ी स्टार्ट न हुई। बलदेव तीन-चार मिनट तक कोशिश करता रहा और उस दौरान सहदेव तथा भगवती में साहस न हुआ कि वे एक-दूसरे की ओर देखें। सहदेव शर्म के मारे जमीन में गड़ा जा रहा था और भगवती की आँखें अपने पैर के अंगूठे पर केन्द्रित थीं।

"सहदेव, पीछे से धक्का देना," बलदेव ने हुक्म दिया।

सहदेव अपनी पूरी ताकत के साथ गाड़ी धकेलने लगा। धुएँ की धुआंर फेंकती हुई गाड़ी चल पड़ी। सहदेव सड़क पर खड़ा का खड़ा रह गया।

'आखिर इस तरह कब तक चलेगा ?' भगवती ने यह सवाल अपने पति से कभी न पूछा था क्योंकि उसमें अपार धैर्य था किन्तु सहदेव उसमें केवल अपार रति ही देखता आया था और समझता था कि किसी भी दिन वह उक्त प्रश्न पूछ बैठेगी।

लेकिन जब सहदेव प्रायः हर रोज शराब के नशे में घर लौटने लगा तो भगवती एक दिन अपनी चुप्पी भंग कर पूछ ही बैठी।

"आखिर इस तरह कब तक चलेगा ? अगर मुझसे दूर रहना चाहते हो तो फिर शादी क्यों की ?"

"मैं तुमसे दूर नहीं रहना चाहता, लेकिन कभी-कभी लगता है कि तुम पास होते हुए भी दूर हो जाती हो···"

"और जो दूर हैं वे पास आ जाते हैं ?"

भगवती ने अपने तर्कसंगत प्रश्न से सहदेव को बचने का एक रास्ता सुझा दिया। तो क्या भगवती समझती थी कि उसका पति किसी अन्य स्त्री पर आसक्त था। तो कम से कम वह उसे एक पूर्ण पुरुष तो मानती थी। नामर्द समझे जाने से बेहतर बदमाश समझा जाना था।

"तुम मुझ पर अविश्वास करती हो ?" सहदेव एकसाथ झूठ बोलने का दुस्साहस न कर पाया।

"विश्वास करने का तुमने मुझे मौका ही कब दिया ? तुम तो हमेशा दूर-दूर रहते हो।"

"लेकिन क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि मैं भी तुम पर अविश्वास कर सकता हूं।" सहदेव ने भगवती को ही अपराधी करार देने

की गरज से पेंतरा बदला, किन्तु दूसरे ही क्षण उसे पश्चात्ताप हुआ कि भगवती के चरित्र पर संदेह प्रकट कर उसने अच्छा नहीं किया। लेकिन तीर छूट चुका था।

"मेरी किस बात से तुम्हें सन्देह हुआ, बोलो !" भगवती ने आहत होकर पूछा।

"आम तौर पर स्त्रियां इतनी चतुर होती हैं कि सन्देह का मौका नहीं देतीं। वे अपने भोले चेहरे से, अपनी मीठी बोली से, अपनी आकर्षक आंखों से पुरुष को इस तरह फांसती हैं कि वह अन्त तक अपनी स्थिति जान ही नहीं पाता।···हमारे पड़ोस में यहां एक औरत थी। वह हर रात को अपने पति को शराब पिलाकर सुला देती और फिर अपने दोस्तों को बुलाती। उसका पति अन्त तक न जान पाया कि वह बद-चलन थी।"

भगवती का मुँह सहसा बहुत छोटा-सा, हठात् थप्पड़ खाये बच्चे-सा हो गया, लेकिन फिर भी उसे अपने पति का उस समय खुलकर बातें करना अच्छा लगा।

"क्या मालूम कि वह आदमी अपनी बीवी के बारे में सब-कुछ जानता हो। कई पति ऐसे भी तो होते हैं जो सब-कुछ जानकर भी आंखें मूंदें रहते हैं।"

इस बार थप्पड़ सहदेव के मुँह पर पड़ा और इतना करारा पड़ा कि वह झुँझला उठा। और कुछ झेंप-झुँझलाहट में और कुछ शराब के नशे में ऊलजलूल बकने लगा। न जाने क्या-क्या उसने कह डाला, किस-किस को कीचड़ में सान डाला।

उत्तर में भगवती ने सिर्फ इतना ही कहा, "मैं शराबी से बहस कर अपना दिमाग खराब नहीं करना चाहती।"

"तो अब तुम्हें अपना पति शराबी लगता है······मैं शराबी हूं··· मैं शराबी हूं और तू, तू क्या है ? सुनेगी मुझ से ? तू······तू······"

सहदेव का अन्तिम वाक्य पूरा होने से पहले भगवती ने अपने हाथ

से उसका मुंह बन्द करना चाहा, लेकिन सहदेव ने अपने समस्त संचित क्रोध के आवेश में उसे जोर से धक्का दे डाला और वह मेज के कोने से टकराकर एक चीख के साथ गिर पड़ी।

"और कहेगी शराबी ? शराबी इसी तरह पेश आते हैं।" सहदेव का गुस्सा अभी तक धीमा न पड़ा था, लेकिन भगवती के माथे पर खून की रेखा देख उसने भगवती की ओर नहीं बल्कि उसके पास की दीवार पर एक कांच का गिलास दे मारा।

भगवती डर गई। सहसा जोर से चिल्ला उठी। उसे पता न था कि उसके पति का क्रोध पति के समग्र व्यक्तित्व की तरह ही कृत्रिम था।

अचानक बलदेव कमरे में आ खड़ा हुआ। वह स्लीपिंग गाउन में था और एक राजा के पोज़ में अपनी कमर में दोनों हाथ रख अकड़कर खड़ा था।

भगवती दौड़कर उसकी तरफ चली आई और रोती हुई बोली, "भाई जी, ये मुझे मार डालेंगे, ये रोज-रोज शराब पीकर आते हैं।"

बलदेव ने उसे अपनी भुजा की छाया में लेते हुए कहा, "सहदेव, औरत पर हाथ उठाते शर्म नहीं आती, बुजदिल कहीं के !"

सहदेव का नशा न जाने कब का काफूर हो चुका था।

"इतनी पी लेते हो कि होश-हवास तक भूल जाते हो। लड़की का यह क्या हाल कर दिया ?" और भगवती की ओर देखते हुए बलदेव ने कहा, "आओ, मेरे साथ चलो, तुम्हारे माथे पर मरहम लगा दूं।"

भगवती की पीठ पर हाथ धर वह उसे कमरे से बाहर ले गया।

सहदेव ने चाहा कि वह सहसा चिल्ला उठे, घर की सब चीजें तोड़-फोड़ डाले, सारे घर में आग लगा दे और फिर एक अट्टहास के साथ सब कुछ भुला दे। लेकिन इतना सब-कुछ न कर पा वह औंधा बिस्तरे पर पड़ गया। वह जानता था कि उस वक्त उसका बड़ा भाई उसकी बीवी के जख्म पर मरहम लगा रहा होगा। अगर एक बार उंगली फेरने से काम चल गया होगा तो भी दो बार तीन बार फेर रहा होगा। भाई

के शरीर की गंध, जो स्वयं सहदेव को कभी प्रिय थी, अब भगवती को सुंघाई दे रही होगी।

और ज्यादा वह सोचना न चाहता था। फिर भी, उसका मन न जाने क्यों इस कल्पना को आगे बढ़ाने के लिए एक विजातीय रस पाने लगा।

उसे और शराब चाहिए थी। लेकिन शराब तो बड़े भाई के कमरे में थी। उसकी बीवी भी तो बड़े भाई के कमरे में थी। सारी दुनियां, सारी जिन्दगी ही बड़े भाई के कमरे में थी।

वह उठ खड़ा हुआ और लड़खड़ाता बलदेव के कमरे तक चला गया।

"क्या मैं अन्दर आ सकता हूं?" उसने भर्राई हुई आवाज में पूछा।

उत्तर में भगवती अपने सिर को ढकती हुई बाहर निकली और झट से अपने कमरे की तरफ चल दी। कमरे के अन्दर पहुंचकर उसने जोर से दरवाजा बन्द कर लिया।

बलदेव के कमरे का दरवाजा अधखुला था और अन्दर की रोशनी बाहर दालान में एक त्रिकोण बना रही थी। सहदेव उस त्रिकोण पर पैर रख उसे मिटाने की कोशिश करता हुआ अन्दर चला आया।

"अब क्या चाहते हो?" बलदेव ने पूछा। वह उस समय भी राजा के पोज़ में था।

"थोड़ी सी शराब।"

"तुम शराब पीने के हकदार नहीं।"

सहदेव में उस समय किसी भी बात पर जोर देने की ताकत न थी। वह मुड़कर बाहर जाने लगा।

"कहां जाते हो?"

"अपने कमरे में।"

"तुम अपने कमरे में जाने के हकदार नहीं।"

सहदेव हतबुद्धि-सा जहां का तहां खड़ा रह गया।

"अन्दर आओ·········सामने कुर्सी पर बैठो।"

सहदेव ने यन्त्रवत् आज्ञा पालन की।

वह एक आराम-कुर्सी पर क्षत-विक्षत पड़ा था। बलदेव नेपोलियन की तरह इधर-उधर टहल रहा था।

"जानते हो, खूबसूरत औरत से शादी करना एक सफेद हाथी पालना है। उसके नखरे राजा ही उठा सकता है। राजा ही उसे अपने काबू में रख सकता है। यह काम वही कर सकता है जिसने लोगों को काबू में रखना सीखा हो।"······

"तो भाई साहब, आप ही बताइए मैं क्या करूं?" डूबते को एक बार फिर अपने भाई का सहारा-सा मिलता नजर आया। इसी सहारे के अभाव ने उसे बेसहारा किया था। वह भाई जो उसकी शादी के बाद से कभी खुलकर न बोला था, हमेशा अकड़ा-सा रहता था, कुछ वसूल करना मांगता था, उस दिन सहदेव को अति आत्मीय प्रतीत हुआ।

"औरत को काबू करना सीखो।"

"कैसे?"

उत्तर में बलदेव हँस पड़ा।

"अगर और कुछ नहीं कर सकते तो उसे डरा-धमकाकर तो रख सकते हो। आदमी चाहे कितना ही कमजोर हो उसकी कमजोरी औरत को नहीं मालूम होनी चाहिए। औरतें डर से ही इज्जत करती हैं नहीं तो कभी किसी की इज्जत न करें।"······

भगवती के मुख पर अंकित भय का भाव, जोकि सहदेव द्वारा दीवार पर कांच का गिलास दे मारने से पैदा हुआ था, सहदेव को याद आया। दरअसल, डरी भगवती हँसती भगवती से ज्यादा सुन्दर दिखाई दे रही थी।

"क्या सोच रहे हो?" बलदेव ने अपने बिस्तरे पर लेटते हुए कहा।

"मालूम है रात का डेढ़ बज चुका है।"······एक पैग पी लो और पड़कर सो जाओ।"······"ऐसी कौनसी कयामत खड़ी हुई है।"

और, सहदेव ने शराब की एक घूंट उतार सोचा कि दरअसल ऐसी कोई मुसीबत नहीं आ खड़ी हुई जो वह सहसा इस कदर परेशान था। शीघ्र ही वह आराम-कुर्सी पर लेटे-लेटे खुर्राटे भरने लगा।

अगले दिन सुबह आँख खुलते ही सहदेव का कलेजा धक्-धक् करके रह गया। नींद खुलने के साथ ही प्रथम कुछ क्षणों में उसे लगा कि मानो सचमुच उसी दिन उसे फांसी पर चढ़ना हो। नींद खुल गई पर वह आंख खोलने की हिम्मत न कर पाया। कुछ देर तक आँखें मूंदे बिस्तरे पर पड़ा रहा।

पिछली रात की नशे में गहरी नींद मृत्यु-तुल्य थी किन्तु आंखों को चौंधिया देने वाली कलकत्ते की धूप में दिन का जागरण मृत्यु से भी भयंकर था और आंखें बन्द करके बिस्तरे पर पड़ा रहना भी कब्र में दफन हुए पड़े रहने के बराबर था। उस समय सहदेव के लिए कुछ भी सोचना, खास तौर पर भगवती के बारे में कुछ भी सोचना असह्य था। अन्त में, मृत्यु में ही उसे एकमात्र मुक्ति दिखाई देने लगी और उसका दिल डूबने लगा।

तभी बलदेव जागा। उसके चेहरे पर आलस्यमय तुष्टि का भाव था।

"अरे तुम सारी रात यहीं सोते रहे?"

"आप ही ने तो मुझे अपने कमरे में जाने से मना किया था।"

"हां किया तो था।" बलदेव ने सिग्रेट सुलगाते हुए कहा, "कभी-कभी अपनी बीवी से दूर रहना भी अच्छा होता है। अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो घर छोड़कर चले जाने की धमकी देकर उसे अपने काबू में कर लेता, और अगर वह इससे भी न मानती तो दरअसल कुछ दिनों के लिए घर से गायब हो जाता। तब उसके होश ठिकाने हो जाते!"

सहदेव के लिए यह एक सुझाव था। पलायन में शान्ति पाना एक अन्य प्रकार की मृत्यु थी। सहदेव की बाजी ही कुछ ऐसी जमी कि हर कदम पर उसके मोहरों की मौत थी। एक अक्लमन्द खिलाड़ी की तरह जो अपने आखरी मोहरे की मौत का इन्तजार न कर पहले ही अपनी मात मान लेता है, सहदेव ने पूछा :

"तो भाई साहब, अगर मैं कुछ दिनों के लिए बाहर चला जाऊं तो आपको कोई ऐतराज तो नहीं ?" वाक्य समाप्त करते ही उसकी आंखों के आगे अँधेरा छा गया।

"मेरे ख्याल से इस समय तुम्हारा चला जाना ही ठीक होगा। वैसे भी कलँकत्ते आये तुम्हें इतने दिन हो गये और तुम कहीं बाहर नहीं गये। दस-पन्द्रह दिन कहीं घूम आओ। आज दिन में मुझसे पैसे ले लेना।"

सहदेव को जाना ही होगा। उसके बड़े भाई का फायदा इसी में था कि सहदेव घर छोड़कर चला जाय और वह भगवती पर एकच्छत्र शासन कर सके। किन्तु क्या भगवती भी यही चाहती थी ? अगर वह नहीं चाहती तो उसके प्रति बड़ा अन्याय होगा। लेकिन, बेहतर यही था कि वह ऐसा चाहे। सहदेव खुद अपनी आंखों से एक बार अपनी बीवी को और अपने भाई को आलिगन-पाश में बँधा देखना चाहता था ताकि हमेशा के लिए उनसे छुट्टी पा सके। वह कोई एक ऐसा ठोस सबूत चाहता था जो भगवती के प्रति उसके अविश्वास को पुष्ट बना सकता।

सहदेव को एकाएक शादी के कुछ दिनों बाद के वे दिन याद आये जब वह बलदेव और भगवती के साथ जगन्नाथ पुरी की सैर करने गया था। रात का सफर था। जब सब मुसाफिर थककर सहारे की तलाश में इधर-उधर हिल रहे थे, सहदेव को नजर आया कि भगवती ने इच्छा-पूर्वक बलदेव का सहारा ले लिया और बलदेव ने उसका हाथ थाम लिया। सहदेव की आंखें फट गईं। जब उसने आगे झुककर गौर से देखा तो बलदेव अलग बैठा और भगवती का सिर दूसरी ओर झुका हुआ था। कुछ देर बाद वही दृश्य उसे फिर दिखाई दिया। दृश्य की अस्पष्टता से

उसे बहुत पीड़ा हुई। अन्धकार ने उसके सम्मुख उपस्थित दृश्य को इतना अस्पष्ट बना दिया कि वह कुछ समझ न पाया। दिन निकलते ही रात्रि के अन्धकार की तरह रात्रि का कुदृश्य भी लुप्त हो गया।

लेकिन तब वह अपने कमरे में अकेले बैठकर, ईर्ष्या से जलते रहकर भी अपने-आपको यह समझाने की क्षमता रखता था कि वह ईर्ष्यालु नहीं। अब स्थिति बदल चुकी थी। अब उसे घर से चला जाना था। वह सिर्फ यही जानना चाहता था कि उसे कुछ दिन के लिए जाना है या हमेशा के लिए।

उस दिन सहदेव ने फिर अपने भाई और अपनी बीवी के साथ बैठकर न चाय पी और न वह अपने कमरे में ही गया। नौकर से अपने कपड़े मंगवाकर सीधा बाहर निकल गया। भाई से जेबखर्च के रूप में मिले हुए अधिकांश पैसे वह बैंक में जमा करा देता था। बैंक से अपने सारे पैसे निकलवाकर वह फिर सड़कों पर घूमने लगा।

सारा दिन वह सड़कों पर घूमता रहा। कलकत्ते की वही सड़कें जो कभी उसके सामने एक नई दुनिया खोलती-सी नजर आती थीं, अब उसे सब तरफ से घेरती-सी दीख पड़ने लगीं। वह दिन में दो-तीन दफा शराब पी चुका था मगर उसने सुबह से खाया कुछ न था। उसके पेट में हल-चल मच रही थी और वह निरुद्देश्य सड़कों पर लड़खड़ाता फिर रहा था। आखिर एक अँधेरे पार्क की बेंच पर जा लेटा और लेटते ही दिन भर की थकावट ने उसे आ घेरा। कुछ ही मिनटों बाद नींद में वह खो गया।

सहदेव ने दो दिन कलकत्ता में इसी तरह घूमकर बिताये। बढ़ी हुई दाढ़ी और मुसे-मुसाये कपड़ों में उसने तीसरा दिन शुरू किया। उस दिन सुबह से उसने पीना शुरू किया और शाम तक एक क्षण के लिए भी अपना नशा न उतरने दिया। शाम को थककर चूर हो गया और घास के मैदान में पड़कर सो गया।

रात को एकाएक उसकी आंख खुली। आंखों से नींद और दिमाग

से नशा बिल्कुल गायब हो चुका था। सोचने पर भी उसे आवाराओं की तरह सड़कों पर घूमते रहने का कारण समझ न आया। अपने कपड़े झाड़ वह उठ खड़ा हुआ और आदतन शराब की दुकान की ओर बढ़ गया।

तीन दिन में पहली बार नशे से पैदा होने वाली स्फूर्ति उसने महसूस की। उसे भूख भी लगी थी अतः पास के रेस्तरां में उसने पेटभर खाना खाया। वह फिर सड़कों पर घूमने लगा।

सड़कों पर बरसात की महीन फुहार पड़ने लगी थी। शाम की चहल-पहल कभी की खत्म हो चुकी थी और दुकानों की रोशनियां भी गुल होती जा रही थीं। सिर्फ मजदूरों, रिक्शे वालों और बेकारों को आश्रय देने वाले होटलों में पुराने घिसे-घिसाये ग्रामोफोन रिकार्ड बज रहे थे।

कलकत्ते की सीधी लम्बी सड़कों के किनारे स्ट्रीट लाइटों की कतार उस समय बहुत साफ दिखाई दे रही थी मानो वे दांत निपोर कर हँस रही हों। बीच-बीच में कोई घोड़ागाड़ी बहुत दूर से अपनी मंदगति से सूचना देती हुई पास से निकल जाती और बहुत देर तक घोड़े की टाप सुनाई देती रहती।

खुली, चौड़ी सड़कों के नंगेपन से तंग आकर सहदेव गलियों में चला आया। गलियों की बन्द दुनिया में उस समय भी कुछ बत्तियां जल रही थीं। कहीं कोई लड़का अपने इम्तहान की तैयारी में पढ़ रहा था; कहीं कोई गृहिणी अपने बच्चों को नींद से उठाकर दूध पिला रही थी; कहीं-कहीं किन्हीं स्त्री-पुरुषों की दबी-दबी हँसी सुनाई दे रही थी; कहीं संगीत का स्वर उठ रहा था। ऊपर की मंजिल की रोशनियां तो बड़ी ही गम्भीर और रहस्यमयी प्रतीत हो रही थीं।

सहदेव गली-गली ही ऐंग्लो-इंडियन, चीनी, मुसलमानी, मारवाड़ी और बंगाली मुहल्लों से गुजरता हुआ और समस्त परिवारों को सुख-शान्ति का आशीर्वाद देता हुआ और हर मोड़ पर अपनी पतलून की

जेब से शराब की बोतल निकाल एक-दो घूंट पीता हुआ आगे बढ़ा चला जा रहा है।

अचानक उसने अपने-आपको अपने मोहल्ले के नजदीक पाया और अपने घर को रात के अँधेरे में दूर से देखने की इच्छा हुई। वह अपने घर के पिछवाड़े स्थित वृक्षों के एक छोटे-से पार्क में एक बेंच पर जा बैठा। यहां से उसे अपना फ़्लैट दिखाई देता था।

सारे मकान में अँधेरा था और वह मकान जो दिन की रोशनी में बहुत सुहावना लगता था, रात के अँधेरे में भीमकाय और भयंकर दिखाई दिया। सहदेव को वह मकान अपना मकबरा-सा लगा जिसमें उसकी जिन्दगी दफनाई जा चुकी थी और जिसे उस वक्त वह खुद खड़ा देख रहा था। भगवती हमेशा की अपनी आदत के मुताबिक सिर पर तकिया रख सो रही होगी और बलदेव अपने कमरे में एक रफ्तार के साथ खुर्राटे भर रहा होगा। क्या पता भगवती जाग रही हो और अपनी बांह पर अपना सिर रख आंख खोले सहदेव के बारे में सोच रही हो। क्या पता भाई भी जाग रहा हो और भगवती को हथियाने की योजना बना रहा हो?...क्या पता वे दोनों एक ही पलंग पर सो रहे हों? क्या पता वे दोनों एक ही पलंग पर अभी तक जाग रहे हों?

बरसात की ओर सहदेव का अभी तक खास ध्यान न था। उसका सिर बिल्कुल गीला हो चुका था और माथे पर पानी की बूंदें टपकने लगी थीं। पत्थर की बेंच बिल्कुल तर हो चुकी थी। कहीं दूर घड़ी ने तीन बजाए। सहदेव ने अपनी जेब से रूमाल निकालकर अपना सिर और मुँह पोंछा।

तभी तीसरी मंजिल के एक कमरे में बत्ती जल उठी। वह सहदेव का ही फ़्लैट था। मगर सहसा वह यह न जान पाया कि वह बत्ती उसके अपने कमरे में जली थी या बड़े भाई के?

उसने अपनी जेब से बची-खुची शराब निकालकर पी डाली। उसकी नजर साफ हुई और उसने देखा कि वह बत्ती उसके भाई के कमरे में

जली थी। मगर बड़ा भाई उस वक्त क्या करने उठा था? क्या वह भगवती के कमरे में जाने के लिए उठा था? सहदेव की दृष्टि उस समय अपने बड़े भाई के कमरे की खिड़की के चौकोर प्रकाश पर गड़ी थी और उसका मन अनेक प्रकार की आशंकाओं से उद्वेलित हो रहा था।

सहसा बड़े भाई के कमरे की बत्ती बुझ गई। तो क्या वह रात के तीसरे पहर तक नींद लेने के बाद महज पेशाब करने उठा था? उसे अब रात को ही भगवती के कमरे में जाने की क्या जरूरत थी! अब तो वह जब चाहे तब जा सकता था।

सहदेव को एकसाथ रात भर की थकावट ने आ घेरा, लेकिन फिर भी उसने अपने कमरों की खिड़कियों की ओर से दृष्टि नहीं हटाई। कुछ देर बाद भगवती के कमरे की बत्ती जल उठी और सहदेव का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। निश्चय ही उसका बड़ा भाई उस समय उसकी बीबी के कमरे में था। अब प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता न थी। उसने चाहा वह दौड़कर ऊपर चढ़ जाय और उन दोनों को आपस में गुथा हुआ पकड़ ले।

वह उठ खड़ा हुआ और जिस तरह कभी-कभी स्वप्न में दौड़ने की कोशिश करके भी दौड़ न पाता था उस समय वह जागरित अवस्था में आगे बढ़ने की कोशिश के बावजूद भी जड़वत् खड़ा रहा।

घड़ी ने चार बजाये। वह प्रायः एक घंटे से वहां खड़ा था और प्रायः उतनी ही देर से भगवती के कमरे की बत्ती जल रही थी। अगर उस समय वह उस कमरे में पहुँच भी जाता तो क्या साबित कर लेता? बलदेव उसे गाली देकर बाहर निकाल देता और भगवती नीचा सिर करके मुस्करा देती।

अचानक भगवती के कमरे की बत्ती बुझ गई और वह प्रकाश-पुंज जिसके सहारे सहदेव अभी तक खड़ा था, हठात् लुप्त हो गया और सहदेव के सामने रह गया शून्य अन्धकार।

रास्ते में ठेला-गाड़ियों की गड़गड़ाहट और फुटपाथ पर सोये भिख-मंगों की बातचीत सुनाई देने लगी। सहदेव अपनी पतलून की दोनों जेबों में हाथ डाल, सिर नीचा किये, धीरे-धीरे पार्क से बाहर चला आया। यद्यपि जो कुछ उसे जानना था वह अपने-आपको बहुत समझाने के बाद भी अच्छी तरह जान न पाया था लेकिन अब तो कुछ भी जानना जरूरी न था। अब वह सिर्फ कुछ दिनों के लिए नहीं, जैसा कि उसके भाई ने सुझाया था, बल्कि सदा के लिए घर से विदा ले रहा था। उसने अन्तिम बार अपने घर की ओर देखा और चल पड़ा।

बारिश तेजी से होने लगी। सहदेव सिर से पैर तक भीग गया। एक खाली टैक्सी पास से निकली। सहदेव ने हाथ दिखाकर उसे रोक लिया और अन्दर जा बैठा।

"कहाँ जाना है ?" टैक्सी-ड्राइवर ने कहा।

यह तो सहदेव भी न जानता था।

"कहाँ जाना है बाबू ?" टैक्सी-ड्राइवर ने फिर पूछा।

"रेलवे स्टेशन ले चलो।"

और सहदेव कलकत्ते की अपनी सुपरिचित सड़कों को हमेशा के लिए छोड़ चला।

बरसात जल्द रुकने वाली न थी। कोलतार की सड़कों पर, कांक्रीट के फुटपाथों पर और टैक्सी की छत पर एक ही गति से लगातार टपाटप पानी पड़ रहा था। सहदेव हमेशा के लिए कलकत्ता छोड़कर जा रहा था। कलकत्ते में अब उसका अपना कुछ नहीं था। फिर भी सड़कों के किनारे भीगे चुपचाप खड़े पेड़ सहदेव को बहुत-कुछ अपने जैसे ही लगे। वे उसके प्रति मूक सहानुभूति प्रकट करते-से दिखाई दे रहे थे।

हावड़ा स्टेशन आ पहुँचा। उस समय वह निराशा के गर्त में डूबा जा रहा था। उस समय उसने अपने-आपको सचमुच एक आधुनिक उपन्यास के पात्र की तरह जटिल स्थिति में पाया। उसके सामने टिकट-घर की बीसों खिड़कियां थीं जिन पर सैकड़ों जगहों के नाम लिखे थे।

वह एक-एक करके सब नाम पढ़ गया। विभिन्न स्थानों के वे नाम उसके लिए कोई मतलब न रखते थे। उस लम्बी-चौड़ी दुनिया में कहीं भी तो उसका कोई ऐसा साथी-सम्बन्धी न था जिसके पास वह जा सकता था। वह बेजान-सा एक बेंच पर जा बैठा।

सामने एक शौचालय था, जिस पर अंग्रेजी में लिखा था, "फ़ॉर जेन्टिलमेन इन योरोपियन ड्रेस ओनली।" सहदेव अन्दर जाना चाहता था। यद्यपि वह योरोपियन ड्रेस में था, चाहे वह मैली-कुचैली मुसी-मुसाई ही थी, परन्तु वह अपने-आपको 'जेन्टिलमैन' मानने को तैयार न था। जेन्टिलमैन अपनी बीवी को छोड़कर, चाहे वह कैसी भी हो, घर से नहीं भागता। सहदेव ने तय किया कि उसे सिर्फ वहीं जाना चाहिए जहां हिन्दी में लिखा हो, 'मर्दाना टट्टी।' लेकिन इन शब्दों में भी कितना व्यंग्य था—मर्द, मर्दाना, मर्दानगी। सहदेव की हाजत जाती रही।

सहदेव फिर टिकटघर की खिड़कियों के सामने चला आया। उसे अपने गीले कपड़ों में हल्की-सी सरदी लग रही थी। उसने एक खिड़की में झांककर पूछा, "जयपुर को गाड़ी कब जायगी?"

"जयपुर को कोई सीधी गाड़ी नहीं जाती, दिल्ली से बदलनी होगी।"

सहदेव को अपने ऊपर तरस आया कि वह इस मोटी-सी बात तक को भूल चुका था।

"दिल्ली की गाड़ी कब जाती है?" उसने फिर पूछा।

"दिन के दो बजे।"

उस समय केवल सुबह के ६ बजे थे। दिन निकल आया था लेकिन वर्षा के प्रकोप ने उसे उभरने न दिया था। कभी-कभी ठंडी हवा के झोंके के साथ पानी की बौछार स्टेशन की इमारत के अन्दर तक आ जाती और सहदेव अपने गीले कपड़ों में सिहर उठता।

वह एक टिफिनरूम के अन्दर चला आया। यहां काफी गरमाहट थी। वह एक मेज के कोने पर चुपचाप जा बैठा। उसका ख्याल था कि उसे अपनी तरफ से कोई चीज मांगनी न चाहिए जब तक कि उससे पूछा न

जाय। वह एक व्यस्त रेस्तरां में था जहां बहुतसे लोग चाय, टोस्ट, वगैरह खा-पी रहे थे। बहुत काफी देर तक सहदेव चुपचाप बैठा रहा और उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। आखिर एक बैरा ने बहुत ही शराफत और अदब के साथ झुककर उसका आर्डर लिया। सहदेव को उस सुन्दर व्यवहार की अपेक्षा न थी और न वह स्वयं को उसका अधिकारी ही समझता था।

सहदेव के सामने एक परिवार बैठा था, मां, बाप और एक ग्यारह-बारह बरस का लड़का। यद्यपि बाप ने कोरी चाय का ही आर्डर दिया था पर फिर भी वह बार-बार अपने बेटे से पूछ रहा था, "और क्या खायेगा ? और क्या खायेगा ?" लड़का मौन और गम्भीर था। मां उसके मन के भाव को समझती थी और साथ ही अपने पति की नीयत को भी। चिढ़कर बोली, "बच्चे से बार-बार क्या पूछते हो। अगर कुछ खिलाना है तो खिला दो।"

सहदेव को वह लड़का अपने जैसा लगा, जो यह न जानता था या जानकर भी कह न पाता था कि उसे क्या चाहिए था और लड़के का बाप बलदेव-सा, जो झूठे ख्वाब दिखाकर ठगने का आदी था। और लड़के की मां भगवती-सी, जो अपने पति की दुर्बलताओं को जानते हुए भी उसीके साथ रहने को बाध्य थी। परन्तु साथ ही अपने पुत्र की भावनाओं का आदर भी करती थी। सहदेव अपने आसपास के वातावरण में अपने अन्तर्-जगत् की कल्पनाओं को मूर्तिमान करता हुआ वहीं बहुत देर तक बैठा रहा।

टिफिनरूम की घड़ी ने नौ बजाये। सहदेव को लगा बहुत काफी वक्त निकल गया। वह उठ खड़ा हुआ और फिर टिकटघर के सामने चला आया। दिल्ली की ओर जाने वाली सब गाड़ियों के टिकट एक ही खिड़की में मिलते थे। वहां उस समय मुसाफिरों की एक लम्बी कतार लगी थी। वह आखिरी छोर पर जा खड़ा हुआ। शीघ्र ही उसके पीछे और भी बहुतसे लोग खड़े हो गये। सहदेव को यह अच्छा लगा और

साथ ही यह भी अच्छा लगा कि वह बिना प्रयत्न ही आगे बढ़ा जा रहा था।

किसी ने पीछे से पूछा, "कहां का टिकट ले रहे हो ?"

"दिल्ली का।"

"दस दस की मेल का ?"

"नहीं, दो बजे की गाड़ी का।"

"दो बजे तो कोई गाड़ी नहीं जाती। साढ़े बारह बजे दिल्ली को दूसरी गाड़ी जाती है।"

"लेकिन मुझे रेलवे इन्क्वायरी के एक आदमी ने बताया है।"

"नहीं हो सकता। तुमने गलत सुना होगा," अधिकारपूर्ण स्वर में उत्तर मिला।

"हो सकता है मैंने ही गलत सुना हो," और सहदेव सोचने लगा—क्या उसने अपने घर की खिड़कियों में रोशनी भी गलत देखी थी ?

गाड़ी में बैठने से पहले उसने दो-तीन दफा मुसाफिरों और कुलियों से पूछा कि वह गाड़ी कहां जाती थी। उसे यह बातें स्वयं जाननी चाहिए थीं। आखिर वह तीसरे दर्जे के डिब्बे के एक कोने में जा बैठा और उसने अपनी आंखें मूंद लीं। दरवाजों और खिड़कियों के बन्द होने की आवाज बहुत देर तक उसे सुनाई देती रही।

गाड़ी चल दी और आगे सहदेव की स्मृति क्षीण होने लगी। शायद वह सो गया था या हो सकता था कि बेहोश हो गया हो। उसकी आंखें बन्द थीं पर उसे इतना ख्याल था कि वह रेल में सफर कर रहा था, दिन का वक्त था और बारिश हो रही थी।

धीरे-धीरे उसके प्राण एक अँधेरे कूप में उतरने लगे। अब वह यह न बता सकता था कि सफर करते हुए कितनी देर हुई थी कि उस वक्त सुबह थी या शाम। लेकिन उस समय किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी थी और बाहर खोमचे वाले शोर मचा रहे थे। इसी तरह की गफलत में वह बहुत दूर तक सफर करता रहा।

अब वह अपनी आंखें खोलना न चाहता था या खोल न सकता था। बहुतसे लोग उसके इर्द-गिर्द शोर मचा रहे थे। दरवाजों के खुलने, बन्द होने की आहट बार-बार सुनाई दे रही थी। साथ के मुसाफिर सहदेव से ही कुछ कह रहे थे, पर वह कुछ समझ न पा रहा था, समझना जरूरी भी न था। किसी ने उसे जोर से हिलाया। किसी ने कहा, "डाक्टर, डाक्टर।"

फिर सहदेव की नाक में डाक्टरी दवाओं की कुछ खुशबू आई और कुछ लोग उसे उठाकर बाहर निकाल लाये।

आगे सहदेव को कुछ याद नहीं। जब उसकी आंखें खुलीं उसने अपने-आपको अस्पताल के एक कमरे में पाया। वह एक साफ-सुथरा, सफेद कमरा था जिसकी बड़ी खिड़की में से धूप आ रही थी। सहदेव उस समय अपने कमरे में अकेला था। उसने एक धारीदार स्लीपिंग सूट पहन रखा था, जोकि उस अस्पताल के मरीजों की वर्दी थी। सामने एक छोटी सफेद मेज पर उसका मुसामुसाया शार्कस्किन का सूट पड़ा था।

एक नर्स ने मुस्कराकर सहदेव का अभिवादन किया।

"मैं किस शहर में हूं?"

"इलाहाबाद में।"

"इन कपड़ों को," सहदेव ने अपने सूट की ओर इशारा करते हुए कहा, "मेरे सामने से ले जाओ।"

वे कपड़े सहदेव को अपनी लाश-से नजर आए। शार्कस्किन का सूट पहनकर अपने बड़े भाई की दौलत पर चलने वाला सहदेव मर चुका था।

"आपकी जेब में एक बटुआ भी मिला है," नर्स ने सहदेव का सूट उठाते हुए कहा।

"उसे भी फेंक दो। वे पैसे मेरे नहीं हैं।"

नर्स ने शंकित होकर उसके पलंग के चारों ओर एक कटघरा लगा

दिया । सहदेव ने अपने-आपको एक बच्चे की सी हालत में पाया । वह आंखें मूँदकर फिर लेट गया । उसकी आंखों पर धूप पड़ रही थी । उसे वह अस्पताल बच्चों का एक लालन-पालन गृह-सा, और कुछ-कुछ एक मन्दिर-सा लगा ।

कुछ देर बाद एक युवक डाक्टर आया । सहदेव ने आंखें खोलीं और बोला, "डाक्टर, मुझे कई दिनों से कब्ज है, कोई जुलाब दो ।"

"देंगे, देंगे ।" डाक्टर ने मुस्कराकर कहा । उसके हाथ में एक नक्शा-सा था और वह कुछ लिख रहा था । "पहले यह बताइए," उसने पूछा, "आपका नाम क्या है ?"

"सहदेवराजसिंह ।"

"उम्र ?"

"अट्ठाइस वर्ष ।"

"विवाहित या अविवाहित ?"

"अविवाहित ।"

"आपके घर में कौन-कौन हैं ?—बड़े भाई हैं ? माता-पिता हैं ?"

"कोई नहीं है ।······डाक्टर मुझे कब्ज की दवा दो ।"

"देंगे, एक बात और पूछना चाहता हूं—क्या आप अपनी बीमारी की इत्तला किसी को नहीं देना चाहते ?"

"मुझे क्या बीमारी है ?"

"आपको कोई बीमारी नहीं । आप बहुत थक गये हैं, हद से ज्यादा । शराब भी आपकी थकावट दूर करने में मददगार साबित नहीं हुई । आपको आराम चाहिए, आराम ।···तो अपने किसी रिश्तेदार को या दोस्त को अपनी खबर भिजवाना चाहते हैं ?"

"नहीं, डाक्टर नहीं । आपने ठीक कहा, मैं आराम चाहता हूं, आराम ।" सहदेव ने फिर आँखें मूंद लीं । नर्स ने खिड़की पर पर्दे डाल दिये । डाक्टर दबी जबान में कुछ हिदायत देकर बाहर चला गया ।

बलदेव, जैसा कि एक बार उसने एक दूसरे आदमी का जिक्र करते हुए कहा था, स्वयं उस अंग्रेजी उपन्यास के एक पात्र की तरह था, जो दुनिया भर की खुराफात करने के बाद भी यह मानने को तैयार न था कि वह बदमाश था। वास्तव में उसने तो कभी सोचा ही न था कि वह कौन था, उसके जीवन का क्या उद्देश्य था ? यह नहीं कि वह कभी अपने बारे में सोचता ही न हो, परन्तु वह सोचना आत्मचिन्तन द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करना न था।

वह सोचता था केवल यह कि किस प्रकार दूसरों को अपने प्रभाव की परिधि में लाया जा सके। उसके लिए हर आदमी एक औजार, एक हथियार या फिर एक रुकावट, एक दीवार के रूप में था। उसे हमेशा सतर्क रहना पड़ता था। हमेशा अपनी ताकतों को तैयार रखना पड़ता था। उसके लिए दुनिया एक दुकान थी और वह स्वयं शो-केश में रखे हुए उस जूते की तरह या टोपी की तरह था जिसकी सफलता ऊंचे से ऊंचे दामों पर बिकने में ही है।

एक बार उसने अपने एक प्रतिद्वन्द्वी व्यापारी के साथ मित्र बनकर विश्वासघात किया था और जब इस ओर उसका ध्यान दिलाया गया तो उसने कहा कि बेवकूफ को धोखा देना अक्लमन्दी को इज्जत देना है। ठीक ही है कि बेवकूफ बुरी जिन्दगी बसर करें। इस दुनिया में जहां कुछ लोग मोटरों में चढ़ते हैं और कुछ लोग नंगे पैर घूमते हैं, अक्लमन्द के लिए यही एक रास्ता है कि वह भी मोटर वालों की पंक्ति में खड़ा हो।

बलदेव का ख्याल था कि जो दूसरों के बारे में बहुत ज्यादा सोचता है अपने-आपको भुला देता है। 'ठीक है। मानवता से प्रेम करो,' एक बार उसने सहदेव से कहा था, 'लेकिन वह जैसी है वैसी ही उसे रहने दो। उसे सुधारने की कोशिश मत करो। नाहक अपने हाथ मत सानो। सिर्फ किशमिश निकालकर खा लो, यह ज्यादा आसान है।'

और, जब सहदेव के घर छोड़कर चले जाने के बाद भगवती ने अपने पति के साथ अपनी लड़ाई का हाल बताते हुए कहा था, 'मैं तो सिर्फ उनकी शराब की आदत के खिलाफ थी,' तो बलदेव ने उत्तर में कहा था, 'अपने पति या पुत्र किसी को भी सुधारने की कोशिश करना हिमाकत है। अभी तुम जवान हो। सुधार का काम बड़ी होकर करना।'

बलदेव चाहे सैद्धान्तिक विषयों पर न सोचता हो, सामाजिक मान्यताओं का चाहे उसे कभी ख्याल भी न आया हो, चाहे दूसरों की भलाई का उससे कोई वास्ता न हो, परन्तु वह दूसरों की कमजोरियों को, दूसरों के आपसी सम्बन्धों को बहुत गौर से देखता था। यही उसका एकमात्र शौक था। उसके लिए जिन्दगी शतरंज की एक बाजी थी जिसके नियमों पर आपत्ति प्रकट करना या उन्हें बदलने की कोशिश करना उसकी दृष्टि में मूर्खता था। इन्सान होश सँभालते ही बाजी जमी पाता है, उसके कायदे-कानून पहले ही बन चुके होते हैं। अगर उसे बाजी जीतनी है तो उसे मोहरों की परस्पर सम्बन्धित स्थिति को अच्छी तरह समझना ही होगा। बलदेव ने अपनी स्थिति को क्रमशः सुदृढ़ बनाया था। वह उन लोगों मे से था जो राजा को मारकर उसका राजपाट और रानी दोनों हथिया लेते थे। न सिर्फ कारोबारी दुनिया में ही बल्कि घर के दायरे में भी वह इस तरकीब को कारगर बनाता था। उसकी कम से कम एक बात की तारीफ करनी होगी कि वह घर में एक नीति और बाहर दूसरी नीति का हिमायती न था। उसके लिए घर बाहर का ही एक पहलू था।

इसलिए उसे घरेलू रिश्ते नापसन्द थे। उसे औरत पसन्द थी लेकिन

बीवी के रूप में पसन्द न थी। किसी भी औरत को बीवी बनाते ही बीच में बहुतसी अड़चनें आ जाती हैं। लिहाज नाम की एक अजीब चीज पैदा हो जाती है, एक अजीब-सी जिम्मेदारी आ जाती है, गले में एक घंटी-सी बँध जाती है, जो खास तौर पर दूसरी औरतों के पास जाते वक्त, जोर-जोर से बजने लगती है। इसीलिए बलदेव ने अपनी पत्नी गोमती को मृत्यु के मार्ग पर प्रशस्त किया था। इसीलिए वह अपनी विधवा मां को राजस्थान के एक गांव में अकेला छोड़कर कलकत्ता चला आया था और मां की मृत्यु पर भी उसने गाँव जाना उचित न समझा। क्रिया-कर्म करने के लिए छोटा भाई वहां मौजूद था।

बहरहाल, समाज के आपसी खिचाव-तनाव को जानकर उनसे लाभ उठाने की बलदेव की सामर्थ्य ने उसे सफलता और शक्ति दोनों प्रदान की थीं। उसे भविष्य की चिन्ता न थी। उसे सामाजिक सम्बन्धों के पेचीदा जाल में शिकार बनकर फँसने का भय न था। वह एक ज्योतिषी की तरह अपने बारे में भविष्यवाणी कर सकता था कि अगले पाँच साल बाद उसकी क्या स्थिति होनी थी। उसका हर कदम, हर वाक्य दूर का असर रखने वाला होता था, और जब उसने भगवती से कहा था, 'अपने पति या पुत्र किसी को भी सुधारने की कोशिश करना हिमाकत है' तो भगवती के विरुद्ध चल रहे परोक्ष युद्ध में काम लाए जाने वाले अनेक अस्त्रों में वह वाक्य भी एक अन्य अस्त्र था।

बलदेव के जीवन की एक जरूरी शर्त यह थी कि उसके सम्मुख सदा कोई प्रश्न, कोई प्रयोजना बनी रहनी चाहिए थी, कोई न कोई शिकार या शत्रु होना चाहिए था, वरना उसकी जिन्दगी बेमानी थी, वरना उसे अपनी ताकत को इस्तेमाल में लाने का कोई मौका न था। आम तौर पर दो तरह के आदमी उसे मिलते थे—एक तो वे जो उसका विरोध करते थे; वह उन्हें सहर्ष स्वीकार करता था। दूसरे वे जो उसका विरोध न कर पाकर उसके हाथ में एक अस्त्र बढ़ा जाते थे; वह उन्हें भी सहर्ष स्वीकार करता था।

लेकिन भगवती तीसरी ही किस्म की थी। न तो उसने बलदेव का विरोध किया और न बलदेव के हाथ में एक अस्त्र बनना ही स्वीकार किया। यदि बलदेव चाहता तो उस पर बलात् अधिकार कर सकता था। ऐसा करना उसके स्वभाव में न था। ऐसा करना उसके लिए जरूरी भी न था। अगर वह चाहता तो शुरू में ही भगवती से शादी कर सकता था। लेकिन शादी करने में वह बात कहां जो फंदा डालकर औरत को इस तरह मजबूर करने में है कि वह अपने-आप खिंची चली आए।

सहदेव को घर छोड़े पांच दिन हो चुके थे। भगवती की बेचैनी बढ़ती चली जा रही थी, परन्तु व्यग्रता के चिह्न वह अपने मुख पर न आने देती थी। वह अचानक अपने-आपको उस मुसाफिर की हालत में पाने लगी जो एक शानदार होटल में ठहरा हुआ हो और जिसका बटुआ खो गया हो। सहदेव उसका मूलधन था और उसके चले जाने के बाद अब वह उस घर में अपने अस्तित्व का औचित्य समझ न पा रही थी।

"भाई जी, आज उन्हें गए पांच दिन हो गये। अब तो कुछ कीजिए न।" आखिर भगवती को कहना ही पड़ा। सहदेव के प्रति बड़े भाई की उदासीनता ने उसे और भी अधिक सशंक बना दिया था। "कम-से-कम पुलिस में रिपोर्ट लिखा दीजिए। क्या पता कोई एक्सीडेंट हो गया हो। क्या पता वह नशे में सुध-बुध खो बैठे हों ?"

"ऐसे पति को वापस पाकर भी क्या करोगी ?" बलदेव ने पूछा।

"क्या आप अपने भाई को, चाहे वह कैसा ही भाई हो," भगवती ने पूछा, "वापस नहीं पाना चाहते ?" अभी तक वह चुप रही थी, बलदेव के वाक्य-प्रहार सहती थी, बात पसंद आने पर या न आने पर समान रूप से नीचा सिर करके मुस्करा देती थी। पति की उपस्थिति में पति के ही पथ-प्रदर्शन में चलना चाहती थी। एक बार किंकर्तव्यविमूढ़ हो उसने पति से पूछा था, 'बोलो, मैं किसकी बुद्धि से जीऊं ?' किन्तु पति मौन रहा और अब घर छोड़कर ही चला गया।

अब भगवती को स्वयं अपनी बुद्धि का उपयोग करना होगा। इस एक विचार ने उसे जीवन में पहली बार एक अद्भुत स्वाधीनता प्रदान की। एकसाथ उसका कद ऊंचा उठ गया। उसकी सांसें सध गईं। स्वयं निर्णय करने की आवश्यकता ने उसे बलदेव के बारे में एक नये दृष्टिकोण से सोचने के लिए भी बाध्य कर दिया।

अभी तक वह बलदेव के कपड़ों-लत्तों का, खाने-पीने का पहले की तरह ही पूरा ध्यान रखती आई थी। बलदेव की मांगें दिन पर दिन बढ़ने लगी थीं और वह यथासम्भव तत्परता के साथ उन्हें पूरा करती आई थी। यद्यपि उन कामों को करते समय उसका विवेक सदा उसके साथ रहता था, परंतु काम कराने या न कराने का निर्णय बलदेव का ही होता था। उसने कभी भी तो किसी काम को करने में आनाकानी न की थी।

यही बात बलदेव को अक्सर परेशान कर देती थी। वह न जाने कितने दिनों से कांटा डाले बैठा था और वह मछली कांटे में लगी आटे की गोली तो कुतर जाती थी मगर पकड़ में न आती थी। भगवती ने बलदेव से उपहार में प्राप्त प्रसाधन-सामग्री और वेश-भूषा सभी को सराहा था और सहर्ष स्वीकार किया था। वह बलदेव के साथ घूमने जाती थी और सिनेमा देखने भी खुशी-खुशी जाती थी। फिर भी बलदेव के इशारों का, उसकी छिपी कोशिशों का उस पर कोई असर न हुआ था। बलदेव अधीर हो चला था और इसीलिए उसने भगवती के प्रति अपने संघर्ष को उष्ण युद्ध का रूप दे दिया था।

भगवती ने पूछा, "क्या आप अपने भाई को, चाहे वह कैसा ही भाई हो, वापस नहीं पाना चाहते?" वह शायद बुद्धि और तर्क के सहारे अपनी हिफाजत करना चाहती थी।

बलदेव को इस तरह की बहस से चिढ़ थी, खास तौर पर वह औरतों से कभी बहस न करता था। उसकी जिन्दगी में कई औरतें आई थीं और उसे याद नहीं कि कभी किसी औरत ने कोई काम की बात या अक्ल की बात कही हो। पर भगवती यदि बहस ही करना चाहती थी तो वह तैयार था।

"भाई और चाहे वह कैसा भी हो, दोनों बातें परस्परविरोधी हैं। भाई को भाई ही होना चाहिए वरना वह भाई नहीं," बलदेव ने उत्तर दिया। उसने पिछले कुछ दिनों से मूंछें रखी थीं जो काफी घनी हो गई थीं। सहसा वह गंभीर हो उठा। उसके मुख पर गंभीरता कम, क्रूरता अधिक थी। भगवती ने पहले कभी उसे क्रोध में न देखा था। क्रोध में सहदेव एक बच्चा-सा लगता था और बलदेव एक हिंसक पशु-सा। बलदेव कह रहा था :

"ऐसे भाई को वापस पाकर क्या करूं जो मेरी और तुम्हारी जिंदगी दूभर बना दे, घर की शांति मिटा दे ? हां, मैं उसकी खुशी जरूर चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि वह जहां भी रहे खुश रहे।"

"नहीं भाई जी," भगवती बोली, "उन्होंने मेरी जिन्दगी कभी दूभर नहीं बनाई। मैंने ही उनकी जिन्दगी दूभर बनाई थी। अगर कोई बहुत ज्यादा शराब पीता है तो जरूर उसके मन पर कोई बड़ा भार होता है। मैं यह न समझी थी। लड़ाई मैंने ही शुरू की थी, कसूर मेरा ही था।"

उत्तर में बलदेव ने कुछ न कहा। जो कुछ उसे कहना था वह कह चुका था। भगवती मौन बनी खड़ी रही और बलदेव निर्लज्जतापूर्वक उसकी ओर देखता रहा।

अन्त में भगवती ने समस्त साहस बटोरकर कहा :

"तो मैं क्या करूं ? ऐसी हालत में मेरा क्या कर्त्तव्य है ?"

"तुम पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो। खुद सोच सकती हो कि तुम्हें क्या करना चाहिए। लेकिन अगर मेरी राय जानना चाहती हो तो मैं एक बात कहूंगा। बहुतसे लोग परलोक के प्रलोभन में अपना इहलोक बिगाड़ लेते हैं, पेड़ की डाल पर बैठी चिड़िया को पाने के लिए अपने हाथ की चिड़िया उड़ा देते हैं। क्या तुम भी उन लोगों की तरह भविष्य की चिन्ता में अपना वर्तमान नष्ट करना चाहती हो ? तुम्हें फिकर करने की क्या जरूरत है ? सहदेव चला गया तो मैं तो नहीं मरा ? अभी तुम बेसहारा तो नहीं हुई। और मैं तो कहता हूं कि सहदेव, जब पैसे खतम

हो जायेंगे, घर लौट आयेगा। और जायगा कहां वह ? इस बीच अक्ल से काम लो, अपनी स्थिति को समझो। जवानी उस लड़ाई की तरह है जिसके खतम हो जाने पर अहसास होता है, पछतावा होता है कि तरकस में तीर रख के ही रह गये।"

भगवती निरुत्तर हो चुकी थी। तर्क-वितर्क से न वह अपनी सुरक्षा कर सकती थी, और न अपने पति को ही वापस पा सकती थी। अब अविलम्ब कोई दूसरा उपाय ढूंढ़ना होगा। वह अपने कमरे में आ खड़ी हुई और आकाश की ओर देखने लगी। कलकत्ते के धूमिल आकाश का संध्याकालीन विषाद एकसाथ बढ़ गया।

"आओ चलो, घूमने चलें," बलदेव ने स्नेहकातर स्वर में कहा, "आज तुम्हें मैं एक ऐसे होटल में ले चलूंगा, एक ऐसा डांस दिखाऊंगा जैसा तुमने कभी न देखा होगा।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी।" भगवती ने कम्पित स्वर से उत्तर दिया। उसकी पीठ बलदेव की ओर थी। वह उस समय अपना मुंह बलदेव को दिखाना न चाहती थी।

"क्यों ? तुम्हारी तबियत तो ठीक है न ? बलदेव ने आगे बढ़कर भगवती की चिकनी नंगी बांह पकड़ ली, और भगवती ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया।"

"क्या बात है ? क्या बात है ?" कहकर बलदेव उसे अपनी ओर खींचने लगा। भगवती ने एकसाथ मुड़कर दोनों हाथों में छिपा हुआ अपना मुँह बलदेव की छाती में दे दिया और वह फूट-फूटकर रोने लगी। यौवन-क्रन्दन फूट पड़ा। भगवती को लगा कि रक्तस्राव की तरह अश्रु-स्राव द्वारा भी स्त्री अपने प्राण बहा सकती है, एक नदी बनकर बह सकती है।

बलदेव ने भगवती को अपनी बांहों में भर लिया था। वह हिचकियां भर-भरकर रो रही थी। बलदेव ने पहले कभी किसी स्त्री को इस तरह रोते न देखा था। वह एक त्रस्त, अबोध बालक का क्रन्दन था, आंसू की

हर बूँद नवजात शिशु-सी चमकीली थी। भगवती की पीठ सहलाते हुए बलदेव जोर-जोर से उसे थपथपाने लगा, जैसे बाप से बिछुड़े हुए बच्चे को पुचकार-पुचकारकर चुप कराने लगा, उसे अपने इन नये रोल पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। उसने भगवती को अपनी बांहों से रिहा कर दिया।

भगवती धरती पर बैठ गई और अपने घुटनों में मुँह देकर जोर-जोर से रोने लगी। वह रोना जल्द रुकने वाला न था।

भगवती रो चुकी थी। लेकिन वह बही नहीं, वहीं धरती पर जमी बैठी रही। कमरे में बत्ती अभी तक नहीं जली थी। सब ओर शांति थी।

भगवती उठ खड़ी हुई। बत्ती जलाई और सिंगारमेज के आइने के सामने आ बैठी। आज उसे अपना चेहरा बहुत-कुछ अपनी मां जैसा दिखाई दिया। मां के होठों के कोनों में सदा एक वेदना सिमटी दिखाई देती थी। वह हँसती थी किंतु वेदना की वक्र रेखा कभी भी दूर न हो पाती थी। आज भगवती को भी अपने होंठ बहुत-कुछ वैसे ही दिखाई दिये थे। भगवती की स्थिति भी बहुत-कुछ अपनी मां जैसी ही थी। मां-बेटी दोनों पतिविहीन थीं। दोनों अपने पतियों के पत्नीविहीन भाइयों के साथ रहती थीं। किंतु फिर भी, कितना अंतर था दोनों की परिस्थितियों में।

भगवती की मां उन चिर-यौवनाओं में थी जो अपनी बेटी की बड़ी बहिन बनकर निभ सकती हैं। इसीलिए, भगवती को याद आया, लोग उंगलियां उठाते थे, कहते थे, "अपने क्वारे देवर के साथ रहती है कर्नल की बहू।" भगवती इस बात को लेकर पहले भी बचपन में कई दफा अटकल लगा चुकी थी। आखिर चाचा ने शादी क्यों नहीं की, वे चाचा जो इस दुनिया में आंख खोलते ही दिखाई दिये और सारी जिंदगी मां के इर्द-गिर्द घूमते रहे।

भगवती अपने पिता के निकट सम्पर्क में अधिक न आई थी। पिता ज्यादातर बाहर ड्यूटी पर रहते थे और जब वह महज दस वर्ष की थी,

वे चल बसे थे। लेकिन बचपन में ही चाचा सदा साथ रहे, सदा भगवती के आदर्श बनकर रहे और सदा मां के पास रहने में ही अपना जीवन सार्थक समझते रहे। एक बार जब मां बीमार पड़ी थीं और जब चाचा बार-बार उनके माथे पर गीली पट्टी रख रहे थे, तो भगवती को बुरा लगा था। उसे अपने मृत पिता के प्रति अन्याय होता-सा प्रतीत हुआ था और जब वह बीच में आ खड़ी हुई थी तो चाचा ने डांटकर कहा था, "बार-बार बीच में क्यों आ जाती हो ? मेरे हाथ क्यों रोकती हो ?"

किंतु मां और चाचा ने सदा ही अपने सुसंस्कारों का परिचय दिया था। विशेषतः मां को अपने कर्तव्याकर्तव्य का सदा ध्यान बना रहता था। उन्हें अपने उच्च कुल, अपने चरित्र की दृढ़ता और अपने पति के गौरव का सदा मान रहता था। शायद चाचा स्वयं में दृढ़ता के अभाव के कारण मां का विशेष आदर करते थे। शायद उनकी वाक्पटुता और आदर्शवादिता स्वयं में दृढ़ता के अभाव के ही कारण पैदा हुई थी। वे बहुत पढ़े-लिखे थे, और उन्होंने मां के वैधव्य के प्रथम अतिकष्टकर चरण में बौद्धिक और आध्यात्मिक सांत्वना पहुंचाई थी। वे स्वयं मां की आत्मिक शक्ति पर पलते थे, बदले में मां के निरर्थक जीवन को बुद्धि और तर्क से सार्थक बना देते थे। परन्तु उनके विचार जितने महान् थे उतने ही अव्यावहारिक होते थे। वे जरा-सी बात के लिए सैकड़ों वर्ष का पुनरवलोकन कर सकते थे। शायद शुरू में वे मां के साथ अपने संबंध को अच्छी तरह न समझते हों, लेकिन जब से, खास तौर पर भगवती के पिता की मृत्यु के बाद से दोनों आत्माओं ने एक-दूसरे को आवश्यक नैतिक समर्थन देना आरम्भ किया; दोनों ऊंचे उठ गये।

भगवती को अपने चाचा बहुत भले लगते थे। उन्होंने ही उसे शिक्षा-दीक्षा दी थी, उसके सामने विचार और कल्पना की नई-नई दुनियाएं खोली थीं, और सामान्य सांसारिक सफलताओं के प्रति विमुख रहने वाले लोगों का आदर करना सिखाया था। वे स्वयं असफल थे। उन्हें दुनियादारी बिल्कुल न आती थी : अगर उन्हें अकेला रहना पड़ जाता तो

निश्चय ही वे अपनी जिंदगी चला न पाते। अगर उन्हें मां की सहानुभूति न मिलती तो निश्चय ही वे बिखर जाते।

भगवती को याद आया कि जब बलदेव सहदेव दोनों भाई शादी का रिश्ता तय करने उसकी मां के घर आये थे, और जब बलदेव ने भीष्म पितामह बनकर स्वयं विवाह करना स्वीकार न कर अपने भाई को विवाह के लिए पेश किया था, और जब भगवती ने सुना कि छोटा भाई लेखक, विचारक और कलाकार था, और अपने भाई के आश्रित था तो उसे बलदेव अपने मृत पिता-सा और सहदेव अपने जीवित चाचा-सा लगा था। वह समझती थी कि यदि उसकी मां को उसके पिता और चाचा के बीच स्वयं वर चुनना होता तो शायद वह चाचा को चुनती। वह चाचा को केवल अपने आत्मिक बल से जीवित ही रख पाई थी, यदि चाचा उन्हें पति के रूप में सम्पूर्णतः मिल जाते तो निश्चय ही वह उन्हें अपने स्पर्श से पूर्णतः सफल बना देती।

भगवती भी समझती थी कि वह अपने प्रेम से अपने पति को परमेश्वर बना सकती थी, अपने ज्येष्ठ को ज्येष्ठतर बना सकती थी। किंतु वर्षों के पाले-पोसे इस आदर्श को, जोकि उसने अपनी मां के खून से पाया था, जोकि चाचा की दलीलों से पुष्ट हुआ था, दोनों भाइयों ने अपने-अपने तरीके से ठुकरा दिया था।

लेकिन भगवती को अपने प्रेम की कसौटी पर घिसने का मौका ही कब मिला था? वह अपने पति को अच्छी तरह जान भी न पाई थी कि वह उसे छोड़कर चला गया। आखिर वह चाहता क्या था? क्या उसे अपनी बीवी बुरी लगती थी? नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता। सहदेव ने भी प्यार किया था चाहे अपने बेढंगे तरीके से ही सही, चाहे सामने रखी हुई चीज को एक लम्बे चक्कर लगाकर पाने के तरीके से ही सही।

भगवती अपने पति की अपेक्षा अपने जेठ को ज्यादा अच्छी तरह जानती थी। वह यह बता सकती थी कि बलदेव कब कौनसा सूट

पहनना पसन्द करेगा, कब बाहर और कब घर में खाना चाहेगा, कब मौन और कब वाचाल होगा। कम से कम भगवती यह अच्छी तरह जान गई थी कि बलदेव उससे क्या चाहता था। अगर यही बात वह अपने पति के बारे में जान सकती तो समस्या हल हो जाती। जो वह चाहता वही देकर उसे अपना बना लेती। इसी जानकारी के अभाव ने उसके पति को उससे दूर भगा दिया, और बलदेव के मामले में इसी जानकारी के प्रभाव ने बलदेव के प्रति उसके विचारों की जटिलता को सुलझा दिया। अब वह जानती थी कि बलदेव उससे क्या चाहता था, और यह भी जानती थी कि वह अपनी इच्छा से ही उसे क्या दे सकती है और क्या नहीं दे सकती।

सहसा भगवती के लिए अपने पति की गांठों को समझना, तत्काल उसे सशरीर पाने से भी अधिक आवश्यक हो गया। सहदेव अपनी पत्नी से बातें करता था, लेकिन कभी भी दिल खोलकर पूरी तरह न कर पाता था, और जो थोड़ी-बहुत करता था उसमें भी ज्यादातर झूठ होता था। वह विवाह के अपने मनगढन्त किस्से सुनाकर भगवती के सामने अपना पौरुष प्रमाणित करता था अथवा भविष्य के सुखद स्वप्न में आकाश-कुसुम तोड़कर स्वयं को सन्तुष्ट कर लेता था।

भगवती जानती थी कि सहदेव उससे बहुत-कुछ छिपाता था और अपनी डायरी में बहुत-कुछ लिखा करता था। भगवती उत्सुक थी यह जानने को कि उस डायरी में क्या लिखा था। एक दिन सहदेव जब अपने बारे में बोलने के मूड में था, भगवती ने उससे पूछा था :

'डायरी में क्या लिखते हो?'

'यही अपने बारे में···कि मैं कौन हूं, कहां जा रहा हूं। जो-कुछ सीखता-पढ़ता हूं, सोचता-समझता हूं, सभी लिखता हूं।'

'क्या कुछ पढ़कर सुनाओगे?'

'नहीं। किसी दूसरे को सुनाने के लिए डायरी नहीं लिखी जाती।

छिपकर पढ़ने की कभी कोशिश भी मत करना। यह विश्वासघात होगा।'

कभी भगवती ने भी कल्पना की थी कि उसका साहित्यिक पति उसे ऐसे प्रेम-पत्र लिखेगा जो साहित्य की एक स्थायी निधि होगी। किन्तु सहदेव ने, न जाने क्यों, कभी उसे एक पत्र तक न लिखा। और सहदेव की दो-चार प्रकाशित रचनाओं में उसका अपना कुछ न था।

भगवती ने पति की अनुपस्थिति में उसकी डायरी पढ़ना पत्नी को अपने दुष्ट भाई के हाथों में छोड़ जाने से कम विश्वासघात का विषय समझा। अभी तक वह अपने पति से रुष्ट थी हालांकि ठंडे दिमाग से सोचने पर वह जानती थी कि सहदेव जैसे को पति चुनने का अर्थ ही एक ऐसे आदमी को अपने पल्ले बांध लेना था जिसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता था कि वह कब क्या कर बैठे?

भगवती अपने आंसुओं को पोंछ, बालों पर कंघी फेर, उठ खड़ी हुई। सहदेव की अलमारी में उसके लिखे हुए कागजों के कुछ पुलन्दे, कुछ जिल्दबँधी कापियां, अखबारों की कुछ कतरनें और लेखन-शिल्प-सम्बन्धी कुछ पुस्तकें थीं। यह स्वल्प सामग्री ही सहदेव की निधि थी, उसका सर्वस्व था। भगवती ने उन सब चीजों को अपने पलंग पर, जहां कि कभी सहदेव सोता था, बिछा लिया और अन्दर से कमरा बन्दकर, पलंग के सिरहाने की बत्ती जलाकर लेट गई। वह सावित्री थी और अपने मृत सत्यवान को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रही थी।

उसने एक जिल्दबँधी कापी उठाई। उसमें सहदेव द्वारा विवाह से पूर्व पढ़ी हुई पुस्तकों पर टिप्पणियां थीं। वे पुस्तकें अधिकांशतः महान् व्यक्तियों विशेषतः राजनीतिक, साहित्यिक और अन्य क्षेत्र के सफल नेताओं की जीवनियां और आत्म-कथाएं थीं। सहदेव की टिप्पणी का प्रयोजन स्वयं में महान् नेताओं के चारित्रिक लक्षण ढूंढना था। उस कापी के हर पन्ने में चांद पकड़ने की कोशिश की गई थी। अगर

हिटलर ने अपनी जीवनी में लिखा था कि वह हिन्दुस्तान को ब्रिटेन के मातहत ही देखना चाहता था तो सहदेव की राष्ट्रीयता या देश-प्रेम को कोई ठेस नहीं पहुंची थी, वल्कि उसका व्यक्तिगत अपमान हुआ था—हिटलर ने सहदेव की निजी संभावनाओं को कुचलना चाहा था। यदि कभी गत शताब्दी में कवि गेटे ने न जाने किस संदर्भ में कहा था : 'कौनसी कठिनाई मुझे रोक रही है, जब मेरे चारों ओर हर राष्ट्र ढहता जा रहा है ?' तो सहदेव को लगा कि वह वाक्य उसी के लिए लिखा गया था। वह दिवा-स्वप्न देखने लगा : सारा कलकत्ता मलवे का ढेर हो गया और सहदेव ईंट, चूने, पत्थर के ऊंचे ढेर पर मर्द, औरत और बच्चों की लाशों पर अकेला खड़ा था : आदिपुरुष मनु एक नूतन सृष्टि का निर्देशन कर रहा था। इस तरह की खामख्यालियों से सारी कापी भरी पड़ी थी। भगवती ने कापी बंद करके एक ओर सरका दी। आखिर वह उन कापियों में क्या पा लेगी ? भगवती दोनों हाथों में अपना सिर देकर चुपचाप बैठ गई।

लेकिन नहीं, उसे पाना ही होगा, अपने पति की सूक्ष्म आत्मा को जानना ही होगा, उसके व्यक्तित्व के गठन को समझना ही होगा। वह उन कागज-पत्रों को गौर से पढ़ने से यदि अपने पति की आत्मा न भी पकड़ सकी तो भी कम से कम उससे भगवती का अपना निजी भावी पथ निश्चय ही आलोकित हो उठेगा। शायद भगवती में सोई हुई मां जाग उठी जो समझती थी कि अपनी गोदी के मरे हुए बच्चे को अपने शरीर के घर्षण से जीवित किया जा सकता है। उन कागज-पत्रों के साथ दिल और दिमाग रगड़ने से, उनमें लिखी हुई पहेलियों को बूझने से अपने पति को वापस पाने का जरिया भी पाया जा सकता है।

भगवती ने दूसरी कापी उठाई। यह युद्ध की डायरी थी। इसी डायरी में जीवन के फिसलते क्षणों को स्थायी मूल्य देने का असंभव प्रयास किया गया था। यदि सहदेव ने जीवनियों और आत्म-कथाओं वाली अपनी कापी में हर जगह स्वयं ही स्वयं को देखा था तो युद्ध की

डायरी में उसने अपनी निजी गौणता को छिपाने का, युद्ध की घटनाओं में जान-बूझकर खो जाने का सफल प्रयास किया था। जिस दिन से दूसरा विश्व-युद्ध आरंभ हुआ सहदेव ने वह डायरी लिखनी शुरू की। धीरे-धीरे उसके पन्ने उन छोटे-छोटे शहरों और गांवों के नामों से रंगे जाने लगे जहां-जहां युद्ध पहुंचने लगा। बीच-बीच में गरमागरम राजनीतिक बहस छिड़ जाती। दुनिया के सामने सिर्फ दो ही रास्ते रह जाते—कम्युनिज्म और फासिज्म। भारत के नेता गांधी जी और नेहरू बुजदिल नजर आते। क्यों वे कुछ न करते थे? युद्ध को आगे बढ़ने क्यों नहीं देना चाहते थे? और प्रायः हर तीसरे-चौथे दिन की डायरी के बाद एक सवाल होता : "और मेरी जिंदगी में कब बम फूटेगा?"

वह पढ़ते-पढ़ते थक गई। वह यह सोचकर भी थक गई कि कोई दुनिया के मामलों में, जिनसे उसका कोई निजी संबंध नहीं, इस कदर गहरी दिलचस्पी कैसे ले सकता है! उसने युद्ध की डायरी बंद कर दी और आंखें मूंद लीं।

किंतु सहसा भगवती ने स्वयं को हलका पाया। वह थकावट एक नई ताजगी की आगवानी-सी लगी। उसके अंदर एक भावना उठी थी कि जो आदमी अपने बारे में, दुनिया के बारे में, इतना ज्यादा सोचता हो वह आसानी से मर नहीं सकता, भटक जरूर सकता है। उसमें प्राण की बहुलता है। जिस वेग के साथ वह उलझा है उसी वेग के साथ सुलझ भी सकता है। सहदेव जीवित है, निश्चय ही जीवित है। इस दृढ़ विश्वास ने भगवती को एक नया बल प्रदान किया। सावित्री यम के पीछे चली जा रही थी और पहला वर पा चुकी थी। नारी के आत्म-विश्वास की वे आंखें उसे मिल चुकी थीं, जिनसे वह निश्चयपूर्वक कह सकती थी, 'वह मरे नहीं।'

रात का प्रथम पहर बीत चुका था। पति के प्रति भगवती का बचाखुचा रोष न जाने कब का दूर हो चुका था। उसने तीसरी कापी उठाई और उसे माथे से लगा लिया। यात्रा लम्बी थी। भगवती जल्दी-

जल्दी पन्ने पलटने लगी।

भगवती ने जब अपने पति की डायरी को पढ़ना शुरू किया था तो उसका उद्देश्य कैसा भी राजनीतिक या साहित्यिक ज्ञान प्राप्त करना न था वरन् स्पष्टतः यह जानना था कि उसके पति को उससे प्यार था या नहीं। परन्तु पढ़ने की प्रक्रिया में भगवती अपने पति के साथ मानो उसकी उंगली पकड़कर, संसार के प्रायः सभी विगत और वर्तमान पुरुषों से मिल आई थी; दूसरे विश्वयुद्ध की विभिन्न रणभूमियों में उतर विजेता और विजित दोनों की मनोदशाओं को जान आई थी; संसार की समकालीन समस्याओं और विवादास्पद विचारधाराओं की झांकी ले आई थी। वह संसार की बृहद् समस्याओं में निजी समस्या की उग्रता खो चुकी थी।

वास्तव में सहदेव ने अपने जीवन में कभी किसी से वैयक्तिक सम्बंध न जोड़ा था। उसके लिए बौद्धिक स्तर पर स्मोलैन्स्क और स्तालिनवाद का पतन अपनी मां और बीवी के मरण के बराबर ही था। वह समझता था कि सांसारिक सम्बन्ध मूर्त आदान-प्रदान पर आधारित हैं, और ऐसे स्थूल सम्बन्धों में व्यक्तिगत लगाव अस्वाभाविक है। किन्तु उसका मन यह न समझता था। वह बार-बार निजी रिश्ता जोड़ना चाहता था। लेकिन उसके जीवन की कुछ परिस्थितियां ही ऐसी थीं कि उसे निजता और आत्मीयता की निरर्थकता प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगी थी। तभी तो वह अपने बड़े भाई को, जिसको कभी उसने अपना खुदा समझा था और जिसकी प्रशंसा में उसकी डायरी के पन्ने के पन्ने भरे थे, छोड़कर चला गया था। निजी सम्बन्धों में उसका विश्वास शायद हमेशा के लिए दूर हो चुका था। यही वक्त था जब भगवती को अपने पति के पास होना चाहिए था। इस विचार ने एक तात्कालिक आवश्यकता बनकर भगवती के मन में हलचल मचा दी।

सहदेव से प्रेम की अपेक्षा करना भगवती की भूल थी यद्यपि भगवती के बारे में सहदेव ने बहुत अच्छी-अच्छी बातें लिखी थीं। उसकी आँखों की चमक, त्वचा की ताजगी, शरीर की सुगंध—सभी-कुछ तो सहदेव ने सराहा

था। भगवती के बदन में एकाएक गुदगुदी मच गई। उसने सहदेव के शरीर के स्पर्श से भी पहले कभी ऐसी गुदगुदी महसूस न की थी। पति को सशरीर पाना भी एक तात्कालिक आवश्यकता बन गई। भगवती को स्वयं इस भावना पर लज्जा आने लगी।

घड़ी ने सुबह के चार बजाये और भगवती हर रोज की तरह नहा-धो, कपड़े बदल, 'वैष्णवजन तो तैने कहिये जो पीर पराई जाणे रे' गुन-गुनाने लगी।

सुबह की चाय पर भगवती हर रोज की तरह बदस्तूर मौजूद थी। लेकिन बलदेव नदारद था। भगवती और बलदेव के बीच एक नया अध्याय आरम्भ हुआ था। बलदेव की असाधारण अनुपस्थिति उसकी ओर से प्रयुक्त की जाने वाली किसी नई प्रविधि की सूचक थी। यदि भगवती प्यार-मोहब्बत से, आग्रह-अनुग्रह से काबू न आई तो उसे एकदम अकेला छोड़कर, उसका सम्पूर्ण बहिष्कार कर सबक सिखाया जा सकता था, और फिर डांट-फटकार, यातना ताड़ना।

जिस चीज से भी बलदेव को परेशानी होती थी वह उसे वहीं रोक देता था, नासूर बना उसे पालता न था। वह न चाहता कि भगवती हमेशा उसके सामने मुंह फुलाये रहे, आंखों में आँसू भरे रहे। उसे रोने-धोने से खास तौर पर परेशानी होती थी। और कौनसा मौका था वह रोने का? खैर, भगवती चौबीसों घंटे तो नहीं रो सकती। उसे चुप होना होगा, हँसना होगा, खिलना होगा।

बलदेव में इंतजार का माद्दा भी था। वह डाकू न था जो दिन-दहाड़े डकैती करता है। वह चोर था जो रात का इंतजार कर सकता है। उसमें डाकू के साहस या दुस्साहस का अभाव न था, लेकिन उसे डकैती से स्वाभाविक अरुचि थी। मजा चोरी में था, किसी को चुपचाप अँधेरे में पकड़ लेने में या किसी को अनजान में, किसी के भोलेपन का किसी की ईमानदारी का फायदा उठाने में था। यह एक ऐसा स्वाद है जो अगर जिन्दगी में न हो तो खाने में नमक न होने के बराबर है।

लेकिन जरूरत से ज्यादा इंतजार बलदेव कर चुका था। जब उसने

पहली बार भगवती को उसके बाप के घर में देखा था तभी से वह उसे चुराकर पाने का संकल्प कर चुका था। तभी से वह सेंध लगा रहा था। वह सहदेव को बेकार करार कर घर से निकाल चुका था। उसका ख्याल था कि भगवती को भी अपने प्यार-दुलार से मुलायम बना चुका था। लेकिन जाहिर था कि भगवती मुलायम नहीं बनी। वह क्वारी धरती की तरह कड़ी बनी रही। तो क्यों उसने बलदेव द्वारा एक के बाद एक दिये गये उपहारों को हार्दिक कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया था? तो क्यों वह आसक्ति की दृष्टि से कई बार बलदेव की ओर देखती थी? क्यों उसने बलदेव को शरीर स्पर्श करने दिया? क्यों उसने हँसते-खेलते, सोते-जागते, अपने असुरक्षित क्षणों में, अपना अर्धनग्न स्वरूप बलदेव को देखने दिया?···तो क्या उसने अपने-आपको बलदेव की बेटी मान रखा था? शायद उम्र के फर्क और रिश्ते के बड़प्पन के कारण भगवती ने यही सोचा हो। लेकिन बलदेव यह कैसे सोच सकता था। वह तो कभी भी इस तरह की रिश्तेदारियों की उलझन में न पड़ा था। उसके लिए तो हमेशा ही मर्द मर्द था और औरत औरत थी और उसके बीच के बाकी सब रिश्ते फिजूल थे। बाहरहाल, भगवती उसकी मंशा जान गई थी, यह अच्छा ही हुआ। अब अगर वह अक्लमन्द होगी तो खुद ब-खुद चली आएगी।

भगवती नित्यप्रति की तरह घर के कामों में लग गई। घड़ियों में वक्त पर चाबी भरी जाने लगी, बिस्तरों की वक्त पर चादरें बदली जाने लगीं, बलदेव की हर जरूरत पहले की तरह ही सुविधानुसार पूरी होने लगी। भगवती ने अपने सतत क्रन्दन के बाद से अच्छाई का एक आक्रमण-सा कर दिया था, सेवा की बाढ़-सी बहा दी, और बदले में बलदेव ने बदमाशी-भरी वापसी का तरीका, पीछे हटकर वार करने का तरीका अपनाया था। फिर भी बलदेव की उपेक्षा के बाद भगवती ने एक दिन याद दिलाया, "आपके इंशोरेंस का प्रीमियम जाना है। आज आखिरी तारीख है।" पहली बार में बलदेव ने भगवती की

बात का जवाब न दिया, लेकिन जब दुबारा बात दुहराई गई तो वह मुड़कर बोला।

"जानती हो कोई आदमी बीमा क्यों कराता है ?" बलदेव ने कहा, 'कोई भी आदमी अपने लिए नहीं, हमेशा दूसरों के लिए बीमा कराता है, ताकि उसके मरने के बाद उसके अपने लोगों को पैसा मिल सके। लेकिन अब मेरा अपना है कौन ? सहदेव छोड़कर चला गया और तुम हो सो···। फिर किसके लिए प्रीमियम करूं।" बलदेव ने सीधा प्रहार किया था। जब सारी बात साफ हो ही गई थी तो झूटे लिहाज की दीवार खड़ी कर रखने में क्या रखा था ?

उत्तर में भगवती ने बलदेव की ओर देखा। उसकी आँखों से आँखें मिलाकर देखा। भगवती ने पहली बार ही उस रोज बलदेव को पूरी तरह देखा था। पहले हमेशा झूठे लिहाज में उसकी आँखें नीची बनी रहती थीं। भगवती ने देखा और यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि बलदेव एक मामूली आदमी, एक छोटे कद का आदमी नजर आया।

"भाई जी," भगवती ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, "जो आप चाहते हैं वह मैं नहीं दे सकती।"

"तुम बेवकूफ हो," बलदेव ने डांटकर कहा, "तुम्हें अभी तक नहीं मालूम कि तुम क्या 'मिस' कर रही हो ?"

भगवती पर बलदेव का कोई असर न हो रहा था। वह स्वयं अपने वाक्य से प्रभावित थी। कोई भी आदमी चाहे वह कितना ही क्रूर और नृशंस क्यों न हो अपने अधीन आये हुए व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं हर सकता, केवल हिंसा से उसके शरीर को क्षति पहुंचा सकता है। दबने और दबाने का कुछ रिश्ता ही ऐसा है कि आखिर में दबने वाले की राहत में ही वह खत्म होता है। भगवती ने महसूस किया कि उसने अपने एक वाक्य से अपनी राहत का रास्ता खोल दिया।

बलदेव कह रहा था, "तुम यह नहीं जानती कि सहदेव में जो कमजोरियां थीं वही मजबूतियां बनकर मुझमें आई हैं। जो मैं तुम्हें दे

सकता हूं वह सहदेव नहीं दे सकता।"

"और जो वे दे सकते हैं, आप नहीं दे सकते," भगवती ने तत्परता के साथ उत्तर दिया। उसका हौसला खुल चुका था।

बलदेव को इतने सीधे उत्तर की आशा न थी। उसे आशा न थी कि अपनी मीठी बोली से सदा दूर रखने वाली भगवती को वह इतनी आसानी से क्रोधित कर सकेगा। वह यही चाहता था। वह जानता था कि वह भगवती के क्रोध को अपने अधिक क्रोध और अपनी अधिक हिंसा से दबा सकेगा। फिर दोनों में से किसी के लिए शिकायत की कोई वजह न रहेगी। लेकिन फिर भी, जब दलील से काम चल सकता था, जब प्रलोभन का एक फंदा और फेंका जा सकता था तो हिंसा की क्या आवश्यकता थी ?

"हां हां, यह मैं जानता हूं," वह बोला "सहदेव के अन्दर जो खूबियां हैं, जैसे साहित्य-प्रेम वगैरह, वे मुझमें नहीं। इसीलिए तो कहता हूं कि अगर तुम्हारी जगह कोई अक्लमन्द लड़की होती तो अपनी किस्मत को सराहती, जो मैं देता हूं मुझसे, और जो सहदेव देता है उससे लेकर अपने जीवन के गोलाकार को पूर्ण बना लेती। सहदेव को खुश रखती, मुझे खुश रखती और खुद तो रहती ही। अब तुमने क्या किया—सहदेव को भगा दिया, मुझे दुखी बना दिया और खुद भी परेशान हो।"

भगवती ने बहस में पड़कर गलती की। उसे अपनी स्वतन्त्रता, अपनी सामर्थ्य बहुत ज्यादा लगती थी, और वह उस उद्देश्य को कुछ देर के लिए भूल गई थी जिससे स्वतन्त्रता और सामर्थ्य की वह भावना उपजी थी।

"भाई जी," उसने पुनः दृढ़ता के साथ किन्तु सविनय कहा, "आप जो चाहते हैं वह मैं नहीं दे सकती।" यही वाक्य दोहराये जाने से बेकार हो गया। उसकी निरर्थकता स्वयं भगवती को प्रतीत होने लगी।

बलदेव ने तुरन्त पलटकर उत्तर दिया, "जो तुम दे सकती हो वही

मैं तुमसे चाहता हूं। बस, चुपचाप चली आओ और हँसकर बोलो। अगर डर लगता है तो आँखें मूंदकर चली आओ।"

भगवती ने उस वक्त आंखें बन्द कर रखी थीं। वह अपनी आंतरिक शक्ति के उस स्रोत को टटोल रही थी जहां से बटन दबने ही वह ताकत रिहा हुई थी जिसने उसे अभी तक बचाया था। पहले मौके पर भगवान् ने आंसुओं की धारा बहाकर, जैसे द्रौपदी का चीर बढ़ा, उसकी रक्षा की थी। वह एक अबला का अस्त्र था, अब उसे एक सबला का अस्त्र चाहिए था।

उसने आंखें खोलीं। उस समय उसे अपने सिर से हटे हुए पल्ले का ख्याल न था, न अपनी छातियों के उतार-चढ़ाव छिपाने की ही फिक्र थी। उस समय वह साधारण भगवती नहीं, आदिभगवती लग रही थी। उसमें सीता-सावित्री सब मिलकर एकसाथ बोल उठीं, "मैंने एक बार अपना पति चुन लिया, एक बार उसका नाम मेरी जबान पर आ गया, और अब यह शरीर भी हमेशा के लिए उसीका हो गया।"

बलदेव ने एकाएक पीठ फेर ली। उसे सस्ती एक्ट्रेस की तरह एक देवी के रोल में भगवती का गरजना अच्छा न लगा। वह चाहता तो हाथ पकड़कर उसे बिस्तरे पर पटक सकता था, एक झटके में उसका ब्लाउज़ फाड़ सकता था, और देवी की वेशभूषा पहने हुई अभिनेत्री एक साधारण स्त्री हो जाती!...वास्तव में शरीर सभी स्त्रियों का साधारण होता है। भगवती के शरीर में भी कोई असाधारणता न थी, केवल यौवन और संयम का संतुलन था, जबकि बलदेव का अन्दरूनी दिल चाहता था कि ऐसा शरीर जिसमें यौवन अधिक और संयम कम हो। यदि शरीर की ही बात की जाय तो उसने एक से एक अच्छे शरीर देख रखे थे।

लेकिन सवाल दूसरा था। इतनी तवालत उठाने के बाद पहले भाई के साथ उसकी शादी का प्रपंच रचा, फिर बिचारे भाई को, जो कुत्ता बन कर रहने को तैयार था, भगा दिया, और इतने दिन तक इन्तजार करने के

बाद भी अब भगवती को न पाना बेमानी थी, बेवकूफी थी। अगर अब बलदेव भगवती को छोड़ भी देता तो क्या उन दोनों के बीच पुराना खूबसूरत रिश्ता कायम हो सकता था? क्या भगवती अब भी उसका आदर कर सकती थी? क्या वह फिर भी उसके साथ पहले की तरह निर्भीकता, निर्द्वंद्वता के साथ अकेली जा सकती थी?···नहीं, यह सब संभव न था। तो फिर क्यों न भगवती को दबोच लिया जाय? क्यों न अपनी योजना को परिणति पर पहुँचाकर समाप्त किया जाय?

बलदेव के चेहरे का भाव बदल चुका था। उसके मन का द्वन्द्व, जो कि भगवती को पाने में अनावश्यक विलम्ब से ऊब जाने के कारण हुआ था, दूर हो चुका था। उसने मुड़कर भगवती की ओर देखा। वह अब भी अपने आदिरूप में खड़ी थी।

"भावनाओं में मत बहो, शांति रखो," उसने भगवती के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं।"

भगवती ने उत्तर न दिया। उसके लिए बलदेव की अब किसी भी बात का उत्तर देना आवश्यक न था। अब भगवती में फिर वही ताकत जाग उठी थी जो अभी तक उसकी हिफाजत करती आई थी, और जिसे उसने अपने-आपको ज्यादा अक्लमन्द समझ, बहस में उलझ, खो दिया था। किन्तु फिर भी भगवती को सहदेव की तथाकथित प्रेमाभि-व्यक्ति का प्रत्युत्तर देना होता तो वह कहती, 'हां, तुम चाहते हो—ठीक वैसे ही जैसे एक सेब को खाने से पहले उसे अपनी आस्तीन से रगड़-रगड़कर चमका कर देखना चाहते हो।'

लेकिन नहीं, भगवती तर्क की तुच्छता अब जान चुकी थी। उसने सोच लिया था कि अब वह महज अपनी छोटी-सी अक्ल से निकली हुई कोई बात कभी न कहेगी। केवल वही बात कहेगी जो उसकी हृदय की गहराइयों से ईश्वरीय वाणी बनकर उठी होगी।

बलदेव का हाथ अभी तक उसके कन्धे पर था। वह कह रहा था, "आओ बैठो, ठंडे दिल से काम लो, मैं तुम्हें किसी भी काम के लिए

मजबूर नहीं करना चाहता।"

भगवती सामने एक कुर्सी पर बैठ गई। बलदेव समझा समझौते का वातावरण बना, समस्या के सुलझने का अवसर आया। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। बलदेव ने संधि का समां बांधकर फिर हमला शुरू किया।

"अभी तुम भावावेश में कह रही थी कि जिसे एक बार पति चुन लिया सो चुन लिया। लेकिन तुम भूल जाती हो कि पति चुनने की स्वतन्त्रता ही तुम्हें कहां थी? यह भी तुम भूल जाती हो कि कायदे से मुझे ही तुम्हारा पति बनना चाहिए था न कि सहदेव को। तुम्हारी मां यही चाहती थी। खैर, छोड़ो इन बातों को। अब सिर्फ एक बात बताओ। अगर मान लो सहदेव साल दो साल तक लौटकर न आये और मैं तुम्हारे सामने विधिवत् विवाह का प्रस्ताव रखूं तो तुम स्वीकार कर लोगी? या अगर सहदेव खुद यह इच्छा प्रकट करे कि मेरी-तुम्हारी शादी हो जानी चाहिए तो तुम्हें मंजूर होगा?" बलदेव सौदा पटाने के लिए माल की कीमत बढ़ा रहा था। वह सोच रहा था कि अगर भगवती की जगह और कोई समझदार औरत होती तो निश्चय ही बलदेव के साहस की सराहना करती, अगर उसे व्यापार करना होता तो निश्चय ही इतनी ऊंची कीमत पर सौदा मंजूर कर लेती।

भगवती चुप थी। वह एक चुप्पी से सौ वाक्य-प्रहारों को चुप कराना चाहती थी, जिस तरह कि पहले वह अपनी एक दलील से बलदेव की सारी बहस बेकार बनाना चाहती थी। लेकिन जीवन के प्रवाह में इस तरह के उसूलों का सहारा लेकर ज्यादा दूर नहीं चला जा सकता। अगर कोरी बहस करना फिजूल था तो चुप रहकर सचाई पर परदा पड़ने देना भी अनुचित था। भगवती को बोलना ही होगा।

"बोलो, जवाब दो!" बलदेव ने मांग की।

भगवती फिर भी चुप रही।

"बोलो न, क्या कहती हो?" बलदेव झुंझला उठा। उसने अपना

बहुत सारा भाग, जरूरत से ज्यादा भाग भगवती को दे रखा था। यह ठीक न था। वह अपनी जिन्दगी की मेज पर अपने तमाम गुण सजाकर बैठा था और इतने दिनों से बाजार के भाव हर ग्राहक को जरूरत के मुताबिक माल बेचकर पनपता जा रहा था। अब यह कल की लड़की आ गई जिसकी झोली मे वह अपनी सारी दुकान उड़ेल बैठा, और वह थी कि फिर भी न मानती थी।

"बोलो न, मेरी बात का जवाब दो," बलदेव ने इस बार चिढ़कर कहा।

"आपको शादी की क्या जरूरत है ? आप केवल मेरा शरीर चाहते हैं, वह जब चाहें, हाथ पकड़कर, थप्पड़ मारकर ले सकते हैं।" सत्य पर पड़ा हुआ ढक्कन हट चुका था। भगवती बोले जा रही थी, "मेरी कोशिश यह होगी कि जब यह शरीर आपके हाथ में पहुंचे, उसमें प्राण न रहें, और अगर आप अपनी कोशिश से शरीर को सप्राण पा भी लेंगे तो उसमें आत्मा न होगी।"

बलदेव अब इन वाक्यों को एक एक्ट्रेस का डायलॉग नहीं कह सकता था। भगवती की कही हुई बात एक पत्थर की लकीर की तरह खिंच गई। समूची भगवती पाना, सचमुच, सम्भव न था। और बलदेव तो दरअसल, भगवती की अन्दरूनी खिलाफत तोड़ना चाहता था, उसकी आत्मा को जीतना चाहता था—उसकी नजरों में अपने-आपको एक बड़ा आदमी समझना चाहता था। क्या उसने इतनी तवालत से पहले भाई की शादी की, फिर उसे भगाया, और अब इतनी फजीहत इसीलिए उठाई थी कि वह भगवती पर बलात् अधिकार पा सके और वह भी केवल शरीर पर ?—और वह भी उस शरीर पर जिसमें उल्लास, उमंग न हो ?—क्या उसने सिर्फ एक लाश पाने को यह सारा प्रपंच रचा था ??······

बलदेव ने एक गहरी सांस ली, न जाने कब का संचित श्वास एक-साथ छूट पड़ा। उसने एक सिगरेट जलाई, एक लम्बा कस खींचा और सारा धुआं एकसाथ छोड़ दिया। कुछ देर तक वह धुएं को देखता रहा।

उसके मुख के भाव बदलने लगे। फिर उसने जेब से रूमाल निकालकर अपने हाथ पोंछ लिये। शायद गीले आटे में से किशमिश निकालने में उसके हाथ सन गये थे। फिर उसने भगवती की ओर देखा। भगवती एक देवी की मूर्ति बनी खड़ी थी।

"तुम स्वतन्त्र हो," बलदेव ने नीची नजर करके कहा, "मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता।"

भगवती को विश्वास न हो रहा था। लेकिन जहां विश्वास की गुंजाइश न थी वहीं विश्वास जमाकर ही तो अभी तक वह अपनी लड़ाइयां जीतती आई थी। उसने अपने विश्वास के बल पर ही तो कागजों के ढेर में से अपने मुर्दा पति को जिलाया था। फिर वह बलदेव के मुंह से निकली हुई बात झूठी क्यों समझती।

"तो क्या मैं अपनी मां के घर कुछ दिनों के लिए जा सकती हूं?" उसने पूछा।

"हां हां," बलदेव बोला। नजर उसकी अपनी सिगरेट के धुएं पर थी।

"मैं जानती थी भाई जी कि एक दिन आप मुझे मेरी इज्जत लौटा देंगे," भगवती ने गद्गद होते हुए कहा, "मैं जानती थी कि एक दिन आप में भी भगवान् जागेगा, आप भी........."

मानना ही होगा कि मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता समाज के दूसरे लोगों के साथ सम्बन्ध जोड़ना है। संसार की सारी मानवी भावनाओं, आकांक्षाओं और आदर्शों के पीछे यही एक आवश्यकता काम करती है, जिसकी पूर्ति में ही मनुष्य की सद्बुद्धि का परिचय मिलता है। यद्यपि मनुष्य हजारों वर्षों से एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में रहता आया है, फिर भी, रिश्तेदारी जोड़ने की इस बड़ी जरूरत को पूरा करने के लिए उसके पास आम तौर पर दो ही तरीके हैं।

एक तरीका दुनिया की हर चीज को अपना बनाकर, अपने दायरे में आने वाली हर चीज पर काबू पाकर दुनिया से रिश्ता जोड़ना है। यह बलदेव का तरीका था।

दूसरा तरीका किसी एक व्यक्ति, एक संस्था या परमात्मा के हवाले खुद को सौंपकर, स्वयं को उसका अंग बनाकर अपने व्यक्तिगत अस्तित्व का पृथक्त्व दूर करना है। यह सहदेव का तरीका था।

एक ओर प्रभुत्व-प्राप्ति और दूसरी ओर आत्म-समर्पण के दोनों तरीकों में जैसा कि बलदेव और सहदेव का परस्पर का सम्बंध था, दोनों अपनी आजादी खो बैठे थे, क्योंकि दोनों एक-दूसरे पर जिन्दा रहते थे। एक ओर सहदेव आत्म-निर्भरता और आंतरिक शक्ति के अभाव में आजादी की चाह खो बैठा था और दूसरी ओर बलदेव अपने शिकार के साथ इतना फँस जाता था कि अपने-आपको अलग न कर पाता था। कठपुतली नचाने वाले का अस्तित्व कठपुतलियों बिना बेमानी है। उसके अलावा इस प्रकार के सम्बन्ध में लेने वाले और देने वाले, दबाने वाले

और दबने वाले दोन ः बीच एक अदृश्य शत्रुता बनी रहती है। वे कभी भी आपस में दिली दोस्त नहीं हो सकते।

संसार से सम्बन्ध स्थापित करने और साथ ही अपने निजी व्यक्तित्व को न खोने का भी एक तरीका है। उस तीसरे तरीके से केवल व्यक्ति का अस्तित्व ही नहीं बना रहता बल्कि उसका विस्तार भी होता है। यह प्रेम का तरीका है, उस सीमेन्ट का तरीका है जो मकान की ईंटों को जोड़ता है। कभी गोमती ने इसी तरीके को अपनाने की कोशिश की थी। लेकिन उसने पहले प्रेम पाना चाहा था, प्रेम को इकतरफा ट्रैफिक समझ लिया था। प्रेम न पाकर संहार करने की वह विकृत चेष्टा बन गई और अन्त में स्वयं अपने संहार में समाप्त हुई।

लेकिन भगवती ने पहले प्रेम न मांगकर पहले प्रेम देना चाहा था। यद्यपि प्रेम वही है जिसमें लेने और देने का भेद न रहे। लेकिन वह तो प्रेम की पूर्ति-परिणति है, आरम्भ नहीं। आरम्भ में प्रेम भी एक सेवा है, साधना है, किसी भी अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य की तरह कठिन है। प्रेम भी एक क्रिया है, प्रक्रिया है, जिसकी सफल पूर्ति पर निश्चय ही इच्छित लक्ष्य प्राप्त होता है। यह भगवती का तरीका था।

बलदेव, सहदेव और भगवती तीन नक्षत्र जो आपस में टकराकर अलग हो गये थे और फिर अपनी धुरी पर घूमने लगे थे। शायद आपसी टक्कर के दौरान तीनों में एक-दूसरे का कुछ हिस्सा समा गया हो। बहरहाल, तीनों गेंदों की तरह फिर अलग-अलग लुढ़कने लगे।

बलदेव प्रतिशोध की भावना के साथ शेयर मार्केट में कूद पड़ा। वह एक जगह का घाटा दूसरी जगह पूरा करना चाहता था।

भगवती अपनी मां के घर फिर फल-पौधों में रम गई और प्रकृति-प्रेम तथा मां और चाचा के स्नेह-जगत् में आक्सीजन पाने लगी।

और सहदेव ?

सहदेव का नया जन्म हो चुका था। वह एक नवजात शिशु की तरह तुतलाने लगा था। अगर सहदेव ने अभी तक अपनी जिन्दगी में

कुछ न किया था, तो कम से कम बी० ए० तो पास किया था, कम से कम वह अपने-आपको पढ़ा-लिखा त कह सकता था। लेकिन नहीं अब, वह पढ़ाई-लिखाई सब भूल चुका था। अब उसे राष्ट्रीयता, सभ्यता, संस्कृति जैसे शब्दों को, जोकि कभी उसकी जमा पूँजी थे, समझ में न आते थे। अब सचमुच वह सारे अमूर्त, अस्पष्ट शब्द भूल चुका था। लिखता वह अब भी था परन्तु स्वयं को लेखक न समझता था।

अब वह शहर से बहुत दूर चला आया था। अब वह सूरज की धूप में, पहाड़ों की ठंडी छांव में, बहते पानी के पास, वनस्पति की विजातीय गंधों के बीच खुश था। अब उसकी बातों में तरह-तरह के रंग खिलने लगे थे, खेतों और फलों के बगीचों की खुशबू आने लगी थी। अब वह सीधी-सादी भाषा में हरे सेब को लाल होते देखता था, सरसों के जरा से बीज को हरे-पीले रंग में कमाल करते देखता था।

इसके अलावा उसने पशु-पक्षियों को देखा था। अब तक उसने अपनी नई दुनिया में मनुष्य और उसके परस्पर सम्बन्धों को समझने की भी कुछ अन्तर्दृष्टि पा ली थी। उसने सुन्दर चिड़ियाओं की चमकती गर्दनें और उन पर झपट्टा मारते बाज के पंखों के फैलाव और सिकुड़ाव को देखा था। उसने संभ्रांत मुर्गियों को अपने बच्चे पालते और चालाक लोमड़ी को उन्हें उठा ले जाते देखा था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि न उसे मुर्गी के लिए दया थी और न लोमड़ी के लिए क्रोध। अब उसे हथेली में खो जाने वाला सरसों का बीज और आसमान में ऊंचा सिर उठाए देवदार का पुराना पेड़ एकसमान प्रभावित करने लगे।

अब यद्यपि वह भगवती से बहुत दूर था, लेकिन दोनों जिन्दगी में पहली बार एक ही मानसिक स्तर पर थे। दोनों प्रकृति से और अपने आसपास के समस्त प्राणियों से प्रेम करने वालों की श्रेणी में से थे। अभी तक वे इतने विकसित न हुए थे कि सामाजिक सम्बन्धों में अपनी रस-अनुभूति का सफल प्रयोग कर सकते। भगवती अपनी मां और चाचा के साथ अपने घर की चारदीवारी में आ गई और सहदेव हिमालय

की तराई में एक छोटे से गांव में, जहां सामाजिक पेचीदगियों के लिए गुंजाइश न थी, चला आया था।

सहदेव पिछले पौने दो साल से इस गांव में ठहरा हुआ था। सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों और सहज, सरल स्वभाव के लोगों के बीच उसे अपना जीवन भी बहुत-कुछ सुलझा हुआ दिखाई देने लगा था। प्रकृति और पड़ोसी से प्रेम करने का पहला नियम वह पा चुका था।

दूसरा नियम काम करना, सच्ची मेहनत करना था, जो उसने गांव के लोगों से सीखा था। वह चुपचाप उस किसान के हाथ देखता रहता जो धरती से रोटी निकालता। वह उस मिस्त्री के हाथ चूमना चाहता जो ऊबड़खाबड़ पत्थर को तराशकर एक शक्ल देता था। वह उस लुहार के हाथों की कद्र करता था जो किसान को हल और बढ़ई को हथौड़ा बनाकर देता था। और वह बढ़ई जो बैलगाड़ियों के पहिए बनाने के लिए बहुत दूर तक मशहूर था, सहदेव का आश्रयदाता था। सहदेव दिन भर उसके यहां बैठा रहता और दरवाजों की जोड़ियों और खाटों के पाये बनते देखता रहता। एक दिन उसने अपने मेजबान से पूछा था :

"तुम ये दरवाजे क्यों बनाते हो?"

"ताकि चोर घर में न घुसें।"

"और ये पलंग के पाये?"

"ताकि इंसान पलंग पर पैदा हो सके और पलंग पर मरे।"

और सहदेव सोचने लगा कि अगर दरवाजे और पलंग न होते तो दुनिया का इतिहास न जाने क्या होता। और सहदेव को बैलगाड़ी के उस पहिए से तो बहुत ही ईर्ष्या थी जो बनते ही लुढ़कने को तैयार हो जाता है।

सहदेव ने देखा कि गाँव वालों के लिए जीवन का अर्थ बेजान, बेकार चीजों को जानदार और कारगर बनाना है। लकड़ी के ठूंठ में से एक बच्चे का पालना बनाना या गीली मिट्टी से एक सुन्दर खिलौना बना देना कमाल का काम था। वे सब के सब कलाकार थे। सदा-सर्वदा नया

जन्म, नया रूप देते रहना यही तीसरा नियम था।

सहदेव ने इन सीधे-सच्चे लोगों के बारे में, उनके इर्द-गिर्द इफरात के साथ फैली हुई प्रकृति के बारे में बहुत-कुछ लिखा था। वह केवल अपने मन-बहलाव के लिए लिखता था और उसने देखा कि काफी खुलकर लिख पाता था। वह यह न देखता था कि उसने कितने शब्द या कितने पृष्ठ लिखा लिये हैं या लिखने का प्रयोजन क्या है? उसे स्वयं लगता कि उसकी लेखनी में भी वही रूप-परिवर्तन आता जा रहा था जोकि उसके चारों ओर प्रकृति और मनुष्य की कुचेष्टा में उसे दिखाई देने लगा था।

पहाड़ की बरसात का मतलब था—चुपचाप कमरे के अन्दर बैठकर लिखते रहना। लेकिन पहाड़ पर यह सहदेव की दूसरी बारिश थी। इस बार वह लिखना न चाहता था बल्कि कुछ करना चाहता था। वैसे भी वह नई-नई किताबें पढ़ने और नई-नई विचारधाराओं से परिचय पाने का इच्छुक था। अब उसके लिए ज्ञानोपार्जन दुनिया को दिखाने के लिए एक आभूषण न था, बल्कि एक स्वास्थ्यवर्द्धक औषधि तुल्य था जिसे खाकर वह ज्यादा देर तक ज्यादा काम कर सकता था।

सहदेव दिल्ली चला आया। उसके कपड़े चीथड़े हो चले थे लेकिन उसका चेहरा एक नई तन्दुरुस्ती से दमदमा रहा था। पैसे उसके पास बिल्कुल न थे लेकिन उसके थैले में दो पुस्तकों की पांडुलिपि और करीब दो दर्जन विलायती फैशन के तम्बाकू पीने के पाइप थे। उसने गांव के अपने बढ़ई मेजबान की मदद से और निजी सूझबूझ से पहले अपने लिए एक पाइप बनाया था। फिर कागज पर तरह-तरह के पाइपों की तसवीर बना उसने खुद पाइप बनाना शुरू कर दिया और दो साल में करीब ३०-३५ पाइप बना डाले।

सहदेव अपने फटे कपड़े और पन्द्रह-बीस दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी में कनाट सर्किस की दुकानों के साइनबोर्ड पढ़ता चला जा रहा था। वह एक बार फिर शहर में आया था और सोच रहा था कि कहीं उसकी

हालत उस गीदड़ जैसी तो न होगी जिसकी मौत उसे शहर की तरफ भगाती हो। लेकिन जब कोई युवती नूतनतम आभूषणों से अलंकृत, सेंट की सुगंध उड़ाती हुई उसके पास से निकल जाती तो उसे लगता मानो शहर की जिन्दगी बिलकुल बेमानी नहीं। हालांकि नैकलेस, आर्मलेट, ब्रैसलेट पहने हुए औरत उसे आसमान के सितारों से दूर लगती थी।

वह तम्बाकू बेचने वाले की एक दुकान के सामने रुक गया। शो विंडो में कई टोबेको पाइप रखे थे। वे अच्छे थे, लेकिन सहदेव के थैले में पड़े हुए पाइप भी बुरे न थे। अगर उन पर पालिश हो जाती तो वे भी शो विंडो में रखने लायक हो सकते थे। वह दुकान के अन्दर चला गया और उसने अपने थैले में से पाँच-छह पाइप निकालकर दुकानदार की ओर बढ़ाये। उसे डर था कि कहीं दुकानदार उसके मैले, फटे कपड़ों पर एतराज कर उसे बाहर न निकाल दे या कहीं उसके माल को चोरी का माल करारकर पुलिस में न दे दे। सहदेव को पुलिस से खास तौर पर डर था क्योंकि उसका ख्याल था कि उसके बड़े भाई ने उसके भाग जाने की इत्तला पुलिस में जरूर की होगी और हिन्दुस्तान के तमाम बड़े शहरों में पुलिस के पास उसके हुलिए होंगे।

लेकिन दुकानदार ने सौदे में दिलचस्पी दिखलाई और बोला, "कितने पाइप हैं तुम्हारे पास। जितने हों सब निकाल दो।"

सहदेव ने अपना थैला काउंटर पर उड़ेल दिया, और वे पाइप जिनमें से एक-एक का डिजाइन सोचने में उसने कितने दिन लगाये थे, सहदेव के बच्चों की तरह सहदेव के व्यक्तित्व की छाप लिये हुए, दुनिया की रोशनी में पहली बार आये।

"इन सबकी कीमत १०० रुपये दे सकता हूं," दुकानदार ने बहुत काफी देर तक हर पाइप का मुआइना करने के बाद कहा।

"लेकिन आपने बाहर एक मामूली पाइप की कीमत, जिसका डिजाइन न बहुत अच्छा है और न जिसकी लकड़ी ही खास अच्छी नजर आती है, १८–२० रुपये लगा रखी है। यह लकड़ी आपको आसानी से

नहीं मिल सकती, बहुत ऊंचे पहाड़ से कटवाकर मंगवाई है। अगर आप हर पाइप की कीमत ५ रु० लगायें तो भी आपको मुझे १५० रु० देने चाहिएं।" सहदेव सोच रहा था कि अगर उसका भाई बलदेव मौजूद होता तो जरूर ही तिगुने दाम दिलवाता।

सौदा तय हो गया और उन १५० रुपये की मदद से सहदेव एक बार फिर सभ्य समाज में वापस आ गया। अब उसके बाल कटे हुए थे, दाढ़ी बनी हुई थी, पतलून, कमीज, जूते सब बदस्तूर थे, और वह हाथ में अपनी कहानियों और स्केचों की पांडुलिपि लिये हुए एक पुस्तक-प्रकाशक से मिलने चला जा रहा था।

सहदेव की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। उसने जीवन में पहली बार सच्ची मेहनत से, मन को खुश करने वाली मेहनत से, पैसा कमाया था और साथ में सम्मान भी पाया था। उसकी लिखी हुई चीजें साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थीं और साहित्य में रुचि रखने वाले लोग काफी तादाद में उसे जानने लगे थे। सहदेव फिर भी स्वयं को लेखक न मानता था। उसका ख्याल था कि किसी भी आदमी को स्वयं को लेखक या कलाकार कहने का अधिकार नहीं, केवल जीवन के हर क्षण में लेखक बनने की कोशिश करते रहने का अधिकार है, और सहदेव ने तो अभी कलम पकड़ना ही सीखा था। उसका वह जोश, एक संभावी लेखक का जोश जो उसे बड़े-बड़े ग्रंथ लिखने के सपने दिखलाता है, गायब हो चुका था। जब वह कलकत्ते में था और दिन भर लाइब्रेरियों में किताबें पढ़ता रहता था और फिर जब रात को खुद अपनी चीज लिखने की कोशिश करता तो दिन भर का पढ़ा-बूझा या हो सकता था दो साल पहले का पढ़ा-बूझा, उसके सामने आ जाता और उसके अपने अपनत्व को कभी न उभरने देता था। लेकिन अब वह पिछला पढ़ा समझा-बूझा सब भूल चुका था और केवल अपने अंतस् से विकसित विश्वास के आलोक में लिखने का प्रयत्न करता था।

परंतु अभी तक जो कुछ सहदेव ने लिखा था, उसमें सामाजिक चेतना नाममात्र को न थी। यद्यपि उसने फूल-पत्तियों और पहाड़ों एवं नदियों के सौंदर्य के बारे में, मनुष्य की सरलहृदयता आदि स्वभाव से उपजी हुई आकांक्षाओं और अभिलाषाओं के बारे में लिखा था, लेकिन

जहां मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बंध का प्रश्न आता, सहदेव स्वयं को असमर्थ पाता था। उसके अलावा अभी तक उसके साहित्य में स्त्री नहीं आई थी।

यदि उसे सचमुच लेखक बनना था तो उसे समाज के आपसी रिश्तों को समझना ही होगा, सबसे पहले अपनी निजी सामाजिक गुत्थियों को सुलझाना होगा। यद्यपि उसने आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी, और स्वतंत्रता चाहे कैसी भी हो, उसके साथ आने वाले सब वरदान भी पा लिये थे, परंतु क्या वह अपने हृदयविदारक अतीत से स्वतंत्र हो चुका था ? क्या वह बलदेव और भगवती को भुला सका था ?

वह रोज दफ्तर जाता, दिन भर प्रूफ पढ़ता, अनुवाद और संपादन करता और शाम को घर चला आता। क्या यही एक लेखक की जिंदगी भी है ? क्या सिर्फ अखबार में अपना नाम देखने और प्रशंसा पाने के लिए ही वह जीवित है ? सहदेव ने अपने जीवन के इतने वर्ष महज एक ऐसे लेखक बनने के लिए नहीं गँवाये थे। वह कुछ और बनना चाहता था, कुछ और करना चाहता था। उसका मन दफ्तर के रुटीन से अब ऊब गया था और उसे यह समझने में देर न लगी कि कुछ कहने के लिए पहले कुछ करना जरूरी है, एक अच्छा लेखक बनने के लिए पहले एक अच्छा आदमी बनना जरूरी है। और एक अच्छा आदमी बनने के लिए पहले समाज के साथ सम्बंध स्थापित करना चाहिए। सहदेव को देखना होगा कि अभी तक के उसके सामाजिक सम्बंधों में क्या त्रुटि रह गई थी।

सहदेव का यौवन बीत चुका था। अब वह तीस के मोड़ पर था। अभी तक वह अपने बारे में ही सोचता आया था कि वह कौन था और कहां जा रहा था, आदि। लेकिन उसने पिछले डेढ़-दो साल से अपने बारे में सोचना बिल्कुल बंद कर दिया था चाहे वह जहन्नुम की तरफ ही जा रहा हो, और उसने देखा कि उसके मन को शांति मिली थी। अब

वह फिर अपने विगत जीवन के बारे में सोचकर अपनी शांति नहीं खोना चाहता था।

लेकिन फिर भी, एक दिन 'आ बैल, मुझे मार' वाली कहावत चरितार्थ कर वह अपने विगत जीवन को अपने सामने ले ही बैठा और उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसमें अपनी पिछली असफलता और असहायता के लिए कोई सहानुभूति, संवेदना न थी। उसने देखा कि स्वतंत्रता के अभाव में उसकी जो हालत हुई थी उचित ही थी। उसे दुःख सिर्फ इसी बात का था कि उसने स्वतंत्रता पाने के लिए काफी पहले प्रयास क्यों न किया। दरअसल अब उसे अपने बारे में सोचना कुछ न था और न सोचने का उसके पास समय ही था। अब उसे काम करना था, और सिर्फ काम के दौरान में काम के बारे में सोचना था।

लेकिन भगवती के बारे में सोचते ही उसका पुराना घाव फिर ताजा हो उठा। भगवान् ने जिसको इतना सुन्दर बनाया था, उसके साथ उसने इतना अन्याय किया था। वह लड़की, पहली बार वह अपने पैतृक घर से विदा लेकर चुपचाप रेल में बैठी आ रही थी, तो न जाने क्या-क्या सोच रही होगी, न जाने क्या-क्या उसकी तमन्नाएं होंगी? और जब वह, जो उसका पति बनने लायक कभी न था, उसे अकेला छोड़ भाग चला आया था, तब वह क्या सोच रही होगी? दरअसल, उसने ही अपनी बीवी को अपने बड़े भाई के चंगुल में फँसने दिया, इसमें भगवती का कोई दोष नहीं था। अगर भगवती को बाध्य होकर बलदेव से दबना पड़ा तो इसमें भगवती का कोई दोष न था। अगर भगवती ने अपनी इच्छा से ही बलदेव का प्रभुत्व स्वीकार किया था तो भी इसमें भगवती का कोई दोष न था। अगर सहदेव भगवती की जगह होता तो शायद वह भी यही करता।

सहदेव का नजरिया बदल चुका था। सहदेव ने पहले कभी भगवती के अंतस् में बैठकर अपनी दृष्टि से उसे देखने की कोशिश न की थी, और न स्वयं को ही कभी इतनी वस्तुमुखी दृष्टि से देखा था। अब

वह स्वयं को वस्तुमुखी और दूमरों को अंतर्मुखी दृष्टिकोण से देखने लगा था। अब उसे रास्ते में रोते बच्चों की पीड़ा का भान होने लगा था और वह रोने की आवाज उसके कानों मे बहुत दूर तक बनी रहती। अब वह भूखे भिखारी की आंखों में पैठकर उसके मन की व्यथा को स्वयं जान व्यथित हो जाता था। अब उसके लिए जिन्दगी एक जिम्मेदारी बन गई।

सहदेव को दिल्ली आये काफी दिन हो चले थे। उसे भगवती का ख्याल अधिकाधिक आने लगा और वह चोट जो पिछले दो साल की भागा-दौड़ी में ज्यादा महसूस न हुई थी आराम से बैठते ही एकसाथ दर्द देने लगी। वैसे भी, यद्यपि सहदेव ने एक लेखक के रूप में पैर टेकने की जगह पा ली थी, परंतु वह समझने लगा था कि साहित्य की साधना स्त्री को साधे बिना संभव नहीं, क्योंकि वह साहित्य नहीं जिसमें सौंदर्य न हो।

सहदेव ने दिल्ली आकर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए पत्रकारिता का पल्ला पकड़ा था और बहुत काफी लेख लिख डाले थे। लेकिन उसे इधर-उधर से पढ़कर लेख लिख डालना और उन पर अपने नाम की मोहर लगा देना अच्छा न लगता था। उससे अच्छा तो बलदेव का धधा ही था जो एक से खरीदकर दूसरे को बेच देता था, कम से कम वह उस सौदे को अपना बनाया हुआ तो न कहता था।

पत्रकारिता में सहदेव को चोरी और सीनाजोरी दोनों नजर आती थीं। इसीलिए वह अक्सर शाम को अपना कमरा अंदर से बंद करके कहानियां लिखने की कोशिश करता। लेकिन कहानी तो अपने निजी अनुभव के आधार पर ही लिखी जा सकती है और सहदेव के निजी अनुभवों की पिटारी में भगवती ने बहुत ज्यादा जगह ले रखी थी। जब कभी सहदेव अपने विगत जीवन के बारे में सोचता भगवती पहले आ खड़ी होती। और उससे पीछे की स्मृतियां आड़ में आ जातीं। जब कभी सहदेव किसी भी स्त्री के बारे में सोचता—चाहे वह बहन, मां, पत्नी,

प्रेयसी या वेश्या हो—भगवती उसके ध्यान में बिना बुलाये आ जाती और उसके विचार-प्रवाह को भंग कर देती। तो क्या वह स्त्रियों के बारे में ही सोचना छोड़ दे ? तो क्या वह कहानी लिखना ही छोड़ दे ?

सहदेव जानता था कि वह भगवती को खो चुका था, हमेशा के लिए खो चुका था। वह पहले भी भगवती से प्रेम करना चाहता था, लेकिन तब उसका ख्याल था कि जब तक वह एक मशहूर लेखक न बन जायगा वह प्रेम को ताक में रखे रहेगा। उसे मालूम न था कि उस वक्त भगवती की मांग वक्त की मांग थी, जिसे वह पूरा न कर पाया था। वक्त आगे बढ़ गया, भगवती उससे अलग हट गई, और अब वह खोये हुए वक्त की तरह खोई हुई भगवती को दुबारा नहीं पा सकता।

फिर भी, कई दफा सहदेव सोचता कि अगर भगवती उसे मिल जाय तो कितना अच्छा हो, और फिर वह अपनी इस खामख्याली को उस आदमी की जैसी समझता जिसने एक रुपये का टिकट खरीदा हो और सोच रहा हो कि उसे एक लाख की लाटरी मिल जाय तो कैसा हो। आखिर उसे भगवती क्यों मिल जाय ? वह भगवती को वापस पाने का हकदार नहीं। जब भगवती उसके पास थी, वह एक मृत साहित्य के पीछे प्रसिद्धि पाने की गरज से दौड़ा चला जा रहा था, और अब जब उसे जीवन में पहली बार सच्ची साहित्यानुभूति प्राप्त हुई थी, जब सृजन के अमृत की कुछेक बूंदें उसकी जबान पर पड़ी थीं, वह शायद एक ऐसी भगवती को पाने की इच्छा कर रहा था जो उसे भूल चुकी थी, जो उसे कभी माफ न कर सकती थी। तो भगवती को खोने की कीमत अदा करनी होगी ? तो साहित्य से भी हाथ धोना पड़ेगा ? या फिर भगवती और साहित्य दोनों को पाना होगा, दोनों को जीतना होगा। यह बात सिर्फ कहने को ही थी, होने को न थी। एक राजा खोई सल्तनत वापस पा सकता है, हारा हुआ किला फिर फतह कर सकता है, लेकिन अपनी नादानी से हारी हुई औरत, वापस पाने पर क्या पहले जैसी ही मिलती है ? क्या कुछ घट-बढ़ नहीं जाती ? क्या उसका रंग बदल नहीं जाता ?

क्या उसमें से कुछ दूसरी बू नहीं आने लगती ?

सहदेव की कलम रुक गई थी, बहुत कोशिश करने पर भी चल नहीं रही थी। अक्खड़ घोड़ी की तरह दुलत्ती झाड़ती थी। सहदेव अपना सिर धुनकर चुपचाप बैठा रह जाता। उसने बहुत कोशिश की कि वह भगवती का ख्याल अपने मन में उठने न दे। कई दफा सोचता कि वह हिन्दुस्तान से भागकर कहीं बाहर चला जायगा और सारा जीवन विदेशों में घूमता रहेगा और बड़ा होकर लौटेगा तभी बूढ़ी भगवती से मिलना चाहेगा। वह स्वयं अपनी कल्पना से भयभीत हो उठा। क्या सारा जीवन भगवती को भुलाने की कोशिश में विदेशों में भटकते रहना ही उसकी किस्मत में लिखा था ? सहदेव की पराजन्मवादी मनोवृत्ति ने तुरन्त स्वीकार कर लिया कि यही उसकी किस्मत में लिखा था। वह भगवती को भूल नहीं सकता था, लेकिन सारी जिन्दगी उसे भुलाने की कोशिश करते रहना ही उसकी किस्मत थी।

सहदेव ने दफ्तर से छुट्टी ले ली। पिछले दो साल की अपनी जिन्दगी में उसे पहली बार शराब की जरूरत महसूस हुई। पतन की गेंद सीढ़ियों पर से लुढ़कने लगी और इस बार दौड़कर उसे पकड़ना सहदेव ने जरूरी न समझा।

सहदेव अभी तक अपने लिखने-पढ़ने में और अपनी चिन्ताओं-व्यथाओं में इतना व्यस्त रहा था कि उसने नई दिल्ली अच्छी तरह घूम-कर भी न देखी थी। नई दिल्ली की हर चीज नई थी। नई सड़कें, नई इमारतें, नई ताजी सूरतें, और नई-नई मोटरकारें, जबकि कलकत्ते की सड़कों पर नई इमारत और नई सूरत भी पुरानी फीकी नजर आती थी।

सहदेव एक नये-से रेस्तरां में चला आया। अन्दर धीमी रोशनी में मन्द गति से संगीत बह रहा था और बीच-बीच में हँसी के बुलबुले फूट रहे थे। सहदेव अपना टोबेको पाइप जलाकर चुपचाप एक कोने में जा बैठा। उसके सामने गिलास में व्हिस्की और बोतल में सोडावाटर

था। कुछ सोडावाटर गिलास में उँड़ेलते हुए वह सोचने लगा कि दो साल पहले उसे शराब में अपनी समस्याओं का अस्थायी समाधान मिल जाता था, लेकिन अब शराब पीना अपनी समस्याओं को और जटिल बनाना था, स्वास्थ्य से अस्वास्थ्य की ओर जाना था। बहरहाल, जान-बूझकर जहर पीने वाले लोग भी तो होते हैं।

शराब की एक पूरी घूँट सहदेव के अन्दर पहुंच चुकी थी। उसकी रगों में खून तेजी से दौड़ने लगा था। रेस्तरां की धीमी रोशनी और धीमी गति से बहने वाले संगीत में एक अद्‌भुत मृदुता, एक अद्‌भुत स्निग्धता दिखाई देने लगी थी, मानो जिन्दगी चाशनी की तरह बह रही हो, और उसका कुछ हिस्सा सहदेव से चिपकता जा रहा हो। सहदेव जीभ निकालकर उसे चाटने लगा। सहदेव को जिन्दगी में मजा आने लगा। उसका सोया हुआ पुरुष जाग उठा। उसने चाहा कि वह हाथ बढ़ाकर सारी दुनिया को अपने में समेट ले। इतिहास में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब विष अमृत और अमृत विष हो गया हो। इतनी जरा-सी बात कि भगवती उसकी विवाहिता पत्नी थी, कि वह उसका विधिवत् पति था वह कैसे भूल बैठा था। भगवती को हाथ पकड़कर ले आने का उसका अधिकार था और वह था कि अपने इस अधिकार को भूले बैठा था। वह कल सुबह की गाड़ी से ही कलकत्ता जायगा और अगले दिन ही सब-कुछ मालूम हो जायगा, सारी परेशानी दूर हो जायगी। वह चुपचाप भगवती के कमरे में चला जायगा। उसे पीछे से पकड़कर चूम लेगा। वह भगवती को बोलने का मौका ही न देगा। उसे हाथ पकड़कर बाहर निकाल लायेगा। बाहर बलदेव से मुलाकात होगी। वह हमेशा की तरह अपने ड्रेसिंग गाऊन में अकड़कर खड़ा होगा, फिर कहासुनी होगी, मारपीट होगी, खून-खराबा होगा, पड़ोसी आयेंगे, पुलिस आयेगी, लेकिन जब तक सहदेव की जान में जान रहेगी वह भगवती का हाथ न छोड़ेगा। आखिर, दुनिया को मानना होगा कि भगवती उसकी बीवी है; वह सिर्फ अपनी बीवी को लिवा ले जाने के लिए आया है। एक

बार पहले भी उसने शराब के नशे में, भीगे कपड़ों में टूटी आत्मा के साथ, इसी तरह सोचा था कि वह भगवती के कमरे में चला जायगा और उसे बल्लदेव के साथ रंगे हाथों पकड़ लेगा। लेकिन तब उसकी आत्मा टूटी थी और शराब ने उसे बिलकुल तहस-नहस कर रखा था। मगर अब उसे जमीन पर पैर टेकने की जगह मिल गई है, सांस लेने की गुञ्जाइश हो गई है। उसकी टूटी हुई आत्मा जुड़ने लगी थी और शराब की दो घूँट में उसे बिलकुल पुख्ता बना दिया था। उसके अन्दर अब वही विश्वास बोलने लगा था जो एक सुन्दर कहानी लिखते समय उसका साथ देता था।

अगले दिन सुबह सहदेव का नशा गायब हो चुका था, चाय के एक प्याले के साथ रही-सही खुमारी भी जा चुकी थी। लेकिन नशे के दौरान पैदा हुआ जोश जो आम तौर पर सोडावाटर जोश होता है, सहदेव पर गहरा असर छोड़ गया था। यद्यपि सहदेव स्वयं को अधिक स्वस्थ और सबल अनुभव कर रहा था परन्तु भगवती को हाथ से पकड़ कर ले आना नशे में जितना आसान लगता था उतना अब न दिखाई दिया। फिर भी, एक बात तय थी कि इस आपसी सम्बन्ध को जिसे उसने खुद एक समस्या बनाया था, उसे स्वयं ही सुलझाना होगा। वही सहदेव जो बचपन में पढ़ते समय उन राजाओं के साहस की कल्पना न कर सकता था जो अपना राजपाट, फौज, हथियार, नौकर-चाकर सब-कुछ खोकर सिर्फ अपने अक्ल के बल पर फिर सब-कुछ वापस जीतने की तैयारी करते थे, अब वही सहदेव कुछ-कुछ अहसास करने लगा कि उन राजाओं में कौनसी शक्ति काम करती थी। सहदेव ने भी घर से भागकर एक प्रकार के साहस का काम किया था। उस एक साहसिक कार्य से प्राप्त स्वतन्त्रता ने उसे साहित्यिक सृजन के इच्छित लक्ष्य पर आशातः पहुँचने के लिए सहायता पहुँचाई थी।

अब उसे दूसरे साहस का काम करना होगा, भगवती को हाथ पकड़ कर लाना ही होगा। इस एक निश्चय के साथ सहदेव की बहुतसी शंकाएं दूर हो गईं। अब उसे यह आशंका न सता रही थी कि अगर भगवती ने उसके साथ चलने से मना कर दिया तो क्या होगा?

वह उसी दिन दोपहर की गाड़ी से कलकत्ता के लिए रवाना हो

गया। वह उन राजपूतों में था जो सिर पर केसरिया साफा बांध अपनी खोई हुई सल्तनत वापस पाने चल देते थे।

जैसे-जैसे गाड़ी कलकत्ते के नजदीक पहुंचती गई सहदेव भगवती को पाने के लिए अपनी एक से एक प्यारी चीज की बाजी लगाता गया। पहले उसने फिर कभी शराब न पीने की कसम खाई। शराब को लेकर ही भगवती से झगड़ा शुरू हुआ था। अन्त में, सवाल यह आया कि क्या वह भगवती को पाने के लिए अपनी साहित्य-साधना भी त्याग सकता था। तुरन्त ही उसका विवेक बोल उठा : लेकिन भगवती और साहित्य परस्पर विरोधी कहां हैं, वे तो परस्पर पूरक हैं। परन्तु उस समय सहदेव अदृश्य के साथ समझौता करने की कोशिश कर रहा था और किसी भी तरह की दिमागी दलील के बीच में दखल न देना चाहता था।

अब वह एक कलाकार की तरह जो केवल अपने विश्वास के बल पर आगे बढ़ता है, या फिर एक कुत्ते की तरह जो सूंघ-सूंघकर अपना रास्ता पहचानता है, जिन्दा रहना चाहता था। उसने मान लिया था कि उसके दिमाग को उसके दिल का गुलाम होना चाहिए न कि मालिक। दिमाग को अपनी सारी ताकत उसी काम में लगानी चाहिए जोकि दिल चाहता हो न कि बिचारे दिल को खुराफाती दिमाग की जी हुजूरी में लगना चाहिए। तो सवाल वहीं का वहीं था—क्या वह भगवती को पाने के लिए साहित्य-साधना छोड़ सकता था ?

उसका दिल क्या कहता था ? उसका दिल शान्ति चाहता था और भगवती ही शान्ति थी। वह अपने दिल को फिर टटोलने लगा। हां, भगवती ही शान्ति थी और साहित्य एक झूठा लबादा था जो उसने नाहक ही अपने कंधों पर लाद रखा था। वह चाहे अपने-आपको कितना ही समझाने की कोशिश क्यों न करे वह साहित्य में सुख पाने नहीं, सुयश पाने आया था। तो उसे सिर्फ नाम की भूख थी ? नहीं, नहीं, बात इतनी आसान नहीं। साहित्य-सृजन की उसकी प्रेरणा में और बहुतसे तत्त्व भी सम्मिलित थे, यश-लिप्सा का भाग केवल तीन चौथाई था। कुछ

भी हो, वह तीन चौथाई भाग एक भूत बनकर उसके सिर पर सवार हो गया था और उसने मर-गिरकर कुछ नाम हासिल कर भी लिया था। धिक्कार है उस नाम को जिसे पाने के लिए सुख-चैन सब-कुछ खो दिया जाय।

वह भगवती को चाहता था। उसे अपने पास रखकर प्यार देना और प्यार पाना चाहता था। यह इच्छा साहित्य-जगत् में नाम पाने से कहीं अधिक स्वस्थ थी। चाहे वह लेखक हो या पत्रकार, लुहार हो या चमार, क्या फर्क पड़ता था अगर भगवती उसके पास होती और समूची उसकी अपनी होती। आखिर सवाल यह बन गया कि एक लेखक होना बेहतर है या एक मर्द ? इस बारे में तो दो राय हो ही नहीं सकतीं।

सहदेव ने भगवती को पाने के लिए अपने साहित्य की भी बाजी लगा दी। उसका सारा भार एकसाथ हलका हो गया। उसे लगा उसका एक और नया जन्म हो गया। वह भविष्य के मंसूबे बाँधने लगा। वह अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए और मेहनत करेगा। बहुत दिन से उसका ख्याल था कि वह मोटर मिकेनिक का काम सीखेगा। चाहे कुछ भी हो, वह अपनी आमदनी बढ़ायेगा और भगवती के लिए अच्छे-अच्छे उपहार लायेगा। कभी वह रुपया कमाना बहुत मुश्किल समझता था, लेकिन अब वह जान गया था कि जितना दिल-दिमाग उसने साहित्य-सृजन से लगाया था, यदि उसका दसवां हिस्सा भी रुपया कमाने में लगाता तो अपने लिए काफी कमा सकता था। और कुछ नहीं तो वह बीमा एजेन्ट तो बन सकता था।

हावड़ा स्टेशन के अमानती सामान-घर में अपना बिस्तरा छोड़ सहदेव सीधा अपने बड़े भाई के घर आया। उस समय कलकत्ते की वे सड़कें जो कभी उसके दिल-दिमाग पर तरह-तरह के रंग चढ़ा देती थीं, उसे दिखाई न दे रही थीं। सहदेव उस समय अर्जुन की तरह सिर्फ चिड़िया की वह आँख देख रहा था जिसे उसने बींधना था। दिन का समय था और बलदेव दफ्तर गया हुआ था। सहदेव बड़बड़ाता हुआ

ऊपर गया। कभी वह मकान उसे बहुत ऊंचा लगता था। वह लिफ़्ट बिना ऊपर चढ़ना मुश्किल समझता था। लेकिन उस दिन वह एक ही सांस से सारी सीढ़ियां पारकर अपने पुराने कमरे के सामने आ खड़ा हुआ।

कमरों में ताला बन्द था। पड़ोसियों से पूछने से मालूम हुआ कि श्री बलदेवराजसिंह करीब एक साल पहले मकान छोड़कर जा चुके थे। कलकत्ते के पड़ोसी, जिनका धर्म ही उदासीनता है, इससे ज्यादा कुछ न बता सकते थे। बलदेव जो दौड़कर ऊपर चढ़ा था मायूसी से नीचे उतर आया।

बलदेव हमेशा की तरह अब भी ज्यादा अक्लमन्द निकला। उसने पहले ही सोच लिया होगा कि शायद सहदेव कभी लौटकर आये और इसीलिए उसने अपना पता-वता तक न छोड़ा। लेकिन बलदेव अक्लमन्द कम और डरपोक ज्यादा निकला—सहदेव ने सोचा। वह चुपचाप अपनी पतलून की जेब में हाथ डाले हुए सड़क पर चला जा रहा था। कलकत्ता में सहदेव का अब अपना दोस्त या दुश्मन कोई न था। वह सीधा रेलवे स्टेशन वापस चला आया। यद्यपि वह बलदेव के पुराने दफ्तर से उसका कुछ पता लगा सकता था परन्तु वह बलदेव के लिए नहीं, भगवती को ढूंढ़ने आया था।

वह सहदेव जो कुछ दिन पूर्व भगवती को भुलाने के लिए संसार के सुन्दरतम भागों में सारी जिन्दगी भटकते फिरना अपनी किस्मत समझता था, अब वही भगवती को पाने के लिए संसार का कोना-कोना छान डालना अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य समझने लगा। उसे भगवती को पाना ही होगा। क्या भगवती की मां और उसके चाचा को भी भगवती का पता न होगा? जरूर होगा, जरूर होगा, सहदेव का दिल कहने लगा। और वह अपनी सुसराल का टिकट ले गाड़ी में जा बैठा। एक हारे हुए किले को फिर फतह करने की तमन्ना रखने वाले सूरमा की तरह वह अपना दलबल एकत्र करने सुसराल जा

रहा था। और कितना सम्मोह है 'सुसराल' नाम में !

कलकत्ता और दिल्ली के बीच सैंकड़ों छोटे-छोटे शहर हैं। न उनमें कलकत्ते की सी ऊँची इमारतें हैं और न नई दिल्ली-सी जगमगाती रोशनियां हैं। वे बीच के शहर, उन बीच के लोगों की तरह हैं जिन्हें कोई नहीं जानता, जिन्हें देखकर भी सब भूल जाते हैं। उन छोटे शहरों में बसने वाले लोग बीच की छोटी-छोटी बातों में दिलचस्पी लेते हैं, अन्डरग्राउंड रेलवे बनाने की नहीं सोचते, अपने मकान के पिछवाड़े आलू-गोभी बोने की सोचते हैं। और सहदेव भी सोचने लगा कि जब वह छठी-सातवीं जमात में पढ़ता था और जब सर्दियों की शाम खेल-कूदकर घर लौटता तो सोचा करता था कि माँ आलू-गोभी की सब्जी और गरम-गरम पराठे खिलायेगी। दर-असल, छोटी-छोटी बातों में दिलचस्पी लेने में कितना स्वाद आता था तब ! क्या बचपन का वह सुख अब नहीं मिल सकता ? अब वह बड़ी-बड़ी बातों में जो फँस गया था।

गंगा के समतल मैदान पर एक ऐसे ही छोटे शहर में सहदेव की ससुराल थी। भगवान् बुद्ध ने रिटायर होने से पहले एक ऐसी ही जगह अपने लिए चुनी थी, जहां मंद गति से एक पालतू नदी बहती थी, और जिसके दोनों किनारों पर लहलहाते हुए समतल समदृश्य खेत थे। सारे दृश्य में कहीं कोई ऊंचा पहाड़, कोई गहरा गड्ढा न था, कहीं कोई व्यग्रता, वक्रता न थी।

सहदेव हमेशा की अपनी आदत के मुताबिक स्टेशन पर अपना सामान छोड़, नहा-धो, नये कपड़े पहन, अपने ससुराल की ओर चला जा रहा था। यह वही सड़क थी जिस पर वह कभी कलकत्ते वालों की बारात में दूल्हा बनकर निकला था।

सुबह का समय था। मिठाई वाले की दुकान पर गरम-गरम जलेबी

बन रही थी। सहदेव को लगा कि शायद उसने पिछले दस साल से जलेबी नहीं खाई। मगर ससुराल की सड़क पर खड़े होकर खाना शोभा न देता था। सहदेव आगे बढ़ गया और अगले मोड़ को पार करते ही भगवती के मकान के सामने आ खड़ा हुआ। मकान का सदर दरवाजा बन्द था। एकसाथ कुंडा खटखटाने की सहदेव में हिम्मत न हुई। वह पास की गली से मकान के पिछवाड़े चला आया।

भगवती अपनी फुलवाड़ी में पौधों को पानी दे रही थी। वह वहीं साक्षात् खड़ी थी। उसे देखने के लिए घड़ी की फिरती सुइयों को देखने जैसी एकाग्रता की आवश्यकता न थी। वह एक आम के पेड़ के नीचे उस एक अमूल्य मणि की तरह खड़ी थी जिसे पाने के लिए हीरो को पाताल में जाना पड़ता था, तरह-तरह की यातनाएं सहनी पड़ती थीं।

"भगवती !" कंपित स्वर में सहदेव ने आवाज दी। उस एक नाम के उच्चारण के साथ अजामिल की तरह वह अपने सब पापों से मुक्त हो गया।

"भगवती !" उसने फिर दोहराया और भगवती ने मुड़कर देखा। भगवती का चेहरा एकसाथ पीले, नीले, लाल रंगों में बदलने लगा। उसकी आँखों में आँसू भर आए और उसने आँसू की फिल्म में से धुंधले-से सहदेव को देखा।

"भगवती !" उसने तीसरी बार कहा और लकड़ी का कटघरा फांद कर अन्दर चला आया। भगवती ने भी आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। सहदेव ने भगवती की गर्दन में अपनी बांह डाल, 'भगवती, भगवती, भगवती, भगवती' की रट लगा दी। दोनों को ख्याल न रहा कि घर और बाहर के लोग उन्हें उस अवस्था में देख सकते थे।

भारत को आजाद हुए दस साल हो चुके थे। देश के नागरिकों के सामने नये-नये मौके, नये-नये रास्ते खुल रहे थे। देश ने आंख खोलने के बाद दस साल में एक जरा-सी करवट ही ली थी कि नई-नई संभावनाएं दिखाई देने लगी थीं।

सहदेव को भी भगवती मिल चुकी थी और "वे सदा सुख-चैन से रहने लगे"—कहकर कहानी खतम की जा सकती है। लेकिन सहदेव ने अपने दाम्पत्य जीवन के अनुभव से जान लिया था कि जीवन में कोई भी मूल्यवान् वस्तु कभी भी पूरी तरह मिलती नहीं, उसे पाने के लिए सदा ही प्रयत्न करते रहना पड़ता है। यद्यपि अब सहदेव एक आदर्श पति था, एक सुस्थापित लेखक था, लेकिन वह महसूस करता था कि उसे पति या लेखक बने रहने के लिए सदा ही प्रयत्नशील रहना पड़ता था।

सहदेव एक प्रकाशक के दफ्तर में काम करता था। उसकी आमदनी बहुत कम थी। फिर भी भगवती की अपनी व्यवहार-कुशलता से दरिद्रता के लक्षण दिखाई न देते थे। यद्यपि सहदेव अपनी आय बढ़ाने के लिए हर रोज सत्रह-अठारह घंटे काम करता था और रात को बिस्तरे पर पड़ते ही सो जाता था, परन्तु भगवती के मुख पर प्रसन्न मुद्रा देख वह सुखी था। कई-कई हफ्ते उसे आंख उठाकर आसमान की ओर देखने तक की फुरसत न मिल पाती थी। पैंतीस वर्ष की आयु में ही उसकी कनपटी के बाल सफेद हो चले थे और भगवती अपना सारा गहना-जेवर बेचकर भी दिन पर दिन बढ़ते कर्ज को रोक न पा रही थी। इस तरह ज्यादा

दिन तक जिंदगी न चल सकती थी।

लेकिन इसी तरह जिंदगी चलती रही और धीरे-धीरे सहदेव दरिद्रता में रहने का अभ्यस्त बन गया। अब वह दो बेटों का बाप भी बन चुका था। वह रात को थका-माँदा घर लौटता और घंटे भर अपने बीवी-बच्चों के बीच बैठ अपने-आपको दुनिया का सबसे सुखी आदमी समझ लेता था। उसे भगवती का प्यार प्राप्त था, समाज को उसका साहित्य स्वीकार था। तो फिर क्या परवाह थी अगर खाने में ही कुछ कम था या कपड़ों में कुछ कमी थी।

सहदेव की आदर्शवादिता और भगवती की व्यावहारिकता के बीच अक्सर टक्कर हो जाती थी। भगवती को सहदेव का दाढ़ी बढ़ाकर घूमना या वक्त पर खाना न खाना पसंद न था और सहदेव को भगवती की जरूरत से ज्यादा सफाई-सुथराई, गरीबी में भी बड़प्पन बनाये रखने की कोशिश से चिढ़-सी थी। और वे दोनों अक्सर आपस में लड़ बैठते। उनके दो छोटे-छोटे बच्चे मां-बाप की लड़ाई देखकर परेशान हो जाते, और उनकी रुआंसी सूरतें देख मां-बाप आपस में संधि कर लेते थे। वे बच्चे बहुत गरीब थे। अक्सर उनकी मां अपनी परेशानियों से तंग आकर उन्हें पीट देती थी और सहदेव भी उन्हें डाँट-फटकारकर दूर कर देता था। सहदेव सोचने लगा कि उसने साहित्य को साधा, स्त्री को साधा और अब उसे एक सफल बाप भी बनना पड़ा। जब सहदेव व्यावहारिक बनने की कोशिश करता तो भगवती आदर्शवादी बन जाती और सहदेव के कंधे पर हाथ रखकर कहती, "पहले तुम अपना उपन्यास पूरा कर लो। फिर इस बारे में सोचना।"

इसी तरह जिंदगी बीतने लगी। सहदेव का छोटा लड़का ६ बरस का हो चुका था। एक दिन वह अपने दरवाजे के बाहर बैठा सड़क का नजारा देख रहा था। एक सूटेड बूटेड सज्जन ने उससे आकर पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है बेटा?"

"आप मेरा नाम क्यों जानना चाहते हैं ?" बच्चे ने तुरंत उत्तर दिया।

"क्या तुम्हारे पिता का नाम सहदेवराजसिंह है ?"

"हां।"

"मैं तुम्हारे पापा का बड़ा भाई हूं। मेरा नाम बलदेवराजसिंह है।"

"आप इतने दिनों से कहां थे ?" बच्चे ने पूछा।

"पहले अपने पापा को खबर करो। फिर बताऊंगा।"

बच्चा दौड़कर अन्दर चला आया और उसने चिल्लाकर एलान किया, "मां, मां पापा के बड़े भाई आये हैं !"

भगवती उस समय नहा-धोकर गुसलखाने से निकली थी। वह एक नये खिले हुए कमल की तरह ताजा दिखाई दे रही थी। उसने अपने सिर के बालों को एक साधुनी की तरह एक जटा में बांध रखा था।

"आइए भाई जी," उसने नमस्कार कर बलदेव का स्वागत किया और एक कुर्सी आगे बढ़ा दी। वह बलदेव को वहीं छोड़कर अन्दर चली गई।

सहदेव सुबह के कुछ घण्टे मौलिक लेखन में लगाता था। भगवती ने एक नियम-सा बना रखा था कि उस वक्त उसके पति के काम में किसी तरह का विघ्न नहीं पड़ना चाहिए था। फिर भी बलदेव के आगमन की सूचना देने वह उसके कमरे में पहुंची और धीरे से बोली, "सुनो, तुम्हारे बड़े भैया आये हैं।"

सहदेव एकसाथ खड़ा हुआ। उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। वह दौड़कर बाहर चला आया और बलदेव की ओर दोनों हाथ आगे बढ़ाता हुआ बोला, "आइए, भाई साहब आइए।"

बलदेव, सहदेव और भगवती तीनों एक छोटे-से कमरे में बैठे थे। तीनों नक्षत्र एक बार फिर एक-दूसरे के रास्ते में आये थे लेकिन अब हरेक का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व था। बलदेव ने मुस्कराकर अपराध स्वीकारोक्ति की भावना से कहा :

"मेरा ख्याल था तुम लोग मुझे अपने घर में घुसने तक न दोगे ?"

उत्तर की आशा में उसकी निगाह सहदेव से भगवती और भगवती से सहदेव पर घूम रही थी। सहदेव और भगवती मुस्करा रहे थे।

"मुझसे कुछ ज्यादतियां हुई हैं। क्या तुम मुझे माफ न करोगे ?"

"अब छोड़िए पुरानी बातों को," सहदेव ने हँसते हुए उत्तर दिया। "यह बताइए आपका सामान कहां है ? आप ठहरे कहां हैं ? आप कलकत्ते से कब चले गये ? आजकल रहते कहां हैं ?"

घंटे भर में ही तीनों आपस में खुलकर बातें करने लगे। मानो उनका कलंकपूर्ण अतीत बिल्कुल मिट गया हो अथवा उन्होंने जान-बूझकर मिटा दिया हो।

बलदेव ने अपने कोट की बटनें खोल ली थीं, और वह सहदेव से कह रहा था, "मैंने तुम्हारी लिखी हुई कुछ चीजें पढ़ी हैं। अच्छा लिखते हो। तुम लेखक बनने के लिए ही पैदा हुए थे।"

कभी इन्हीं शब्दों को अपने बड़े भाई के मुंह से सुनने को वह कितना उत्सुक था, लेकिन अब वह बड़े भाई से ज्यादा खुद जानता था कि वह क्या करने के लिए पैदा हुआ है।

भगवती अन्दर चाय बनाने जा चुकी थी। बलदेव कह रहा था, "मैं जानता हूं अब तुम मेरे साथ रहने को तो कभी राजी न होगे, लेकिन क्या मुझसे थोड़ी भी मदद लेना मंजूर न करोगे ? तुम्हारे ये इतने सुन्दर बच्चे इतने फटेहाल रहें, और मैं देख रहा हूं कि तुमने भगवती के बदन पर एक गहना तक नहीं छोड़ा। सर्दी का वक्त है और तुम लोगों के पास पूरे कपड़े भी नजर नहीं आते। क्या तुम मुझसे कुछ सहायता स्वीकार करोगे ?"

"नहीं भाई साहब," सहदेव ने तुरन्त कहा, "इसकी कोई जरूरत नहीं," हालांकि वह जानता था कि उसी शाम दूधवाला तकाजा करने आने वाला था। "मैं गरीबी का आदि हो गया हूं। मैले कपड़े के रंग में कम या ज्यादा धूल कोई खास फर्क नहीं लाती।"

बलदेव और सहदेव की आंखें मिलीं और बलदेव ने समझ लिया कि वह सहदेव को हमेशा के लिए खो चुका था। उसका कैसा भी प्रलोभन सहदेव को डिगा न सकता था।

वे दो घंटे तक बातें करते रहे। अपने परिचितों, साथियों, संबंधियों का हालचाल बताते रहे और फिर बलदेव उठकर उन दोनों से इजाजत ले, दोनों बच्चों को प्यार कर, चल दिया।

